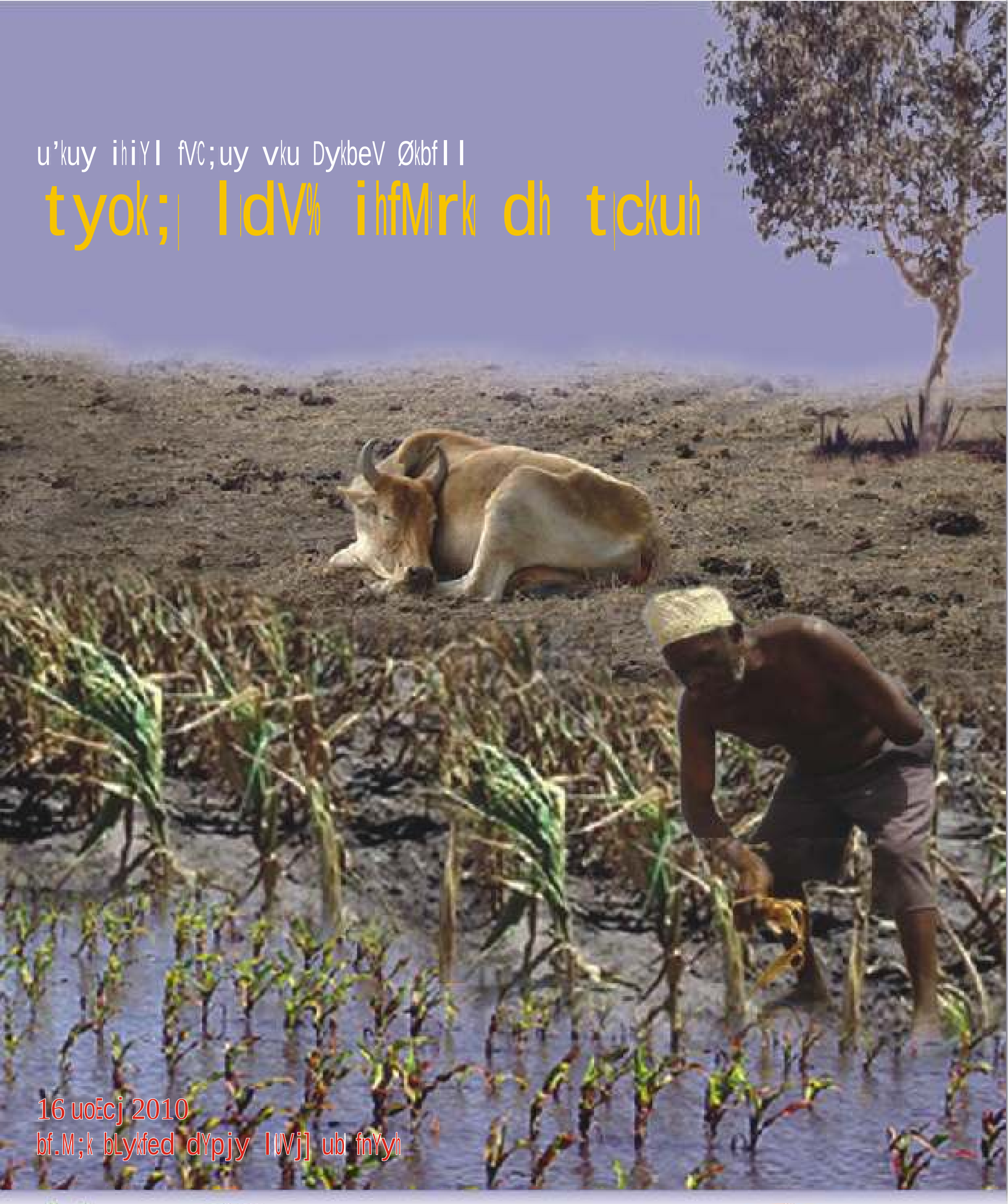

u'kuy ihiYl fVC;uy vku DykbeV Økbfll

tyok; ldV% ihfMrk dh tckuh

16 uoEcj 2010

bf.M;k bLykfed dYpjy lUVj] ub fnYyh

ecology centre · cecoedecon · Oxfam India · Pairvi · SADED

जलवायु संकटः पीड़ितों की ज़ुबानी

नेशनल पीपुल्स ट्रिब्युनल ऑन क्लाइमेट क्राइसिस

16 नवम्बर 2010 | इण्डिया इस्लामिक कल्चरल सेन्टर, नई दिल्ली

जलवायु संकटः पीड़ितों की ज़ुबानी

नेशनल पीपुल्स ट्रिब्युनल ऑन क्लाइमेट क्राइसिस

16 नवम्बर 2010 | इण्डिया इस्लामिक कल्चरल सेन्टर, नई दिल्ली

संपादन : अजय कुमार झा, विजय सिंह नेगी

संकलन : अंशुमन चतुर्वेदी, अपर्णा सरीन

भाषांतर व शब्द संयोजन : जावेद ख़ान

आवरण व स्वरूप : रजनीश श्रीवास्तव

प्रकाशकः

पैरवी

जी-30, प्रथम तल, लाजपतनगर-III, नई दिल्ली-110024

फोन : +91 11 29841266, 6515829 | फैक्स : +91 11 29841266

Email: pairvidelhi@rediffmail.com, pairvidelhi1@gmail.com

Web: www.pairvi.org | Blog: beyondcph.blogspot.com

सहयोग

ऑक्सफैम इण्डिया

अनुक्रम

ज्यूरी

प्रस्तावना

1. कृषि, पशुपालन व जीवनयापन की कठिनाईयां 07
- अनिमेष गिरि, पश्चिम बंगाल

2. तटीय जीवन पर गहराता संकट 10
- अजंता, तमिलनाडु

3. प्रभावित होती आजीविका, सामाजिक गतिविधियां और कठिनतम होता जीवन 13
- लक्ष्मण सिंह नेगी, उत्तराखण्ड

4. बदलते मौसम के साथ बदलती स्थितियां 16
- प्रभाती देवी, राजस्थान

5. सूखते तालाबों के साथ सूखता जीवन 19
- रामप्रसाद रैकवाद, मध्य प्रदेश

6. जलवायु से प्रभावित जल, जंगल, ज़मीन 21
- बिशनराम एवं हरीराम, उत्तराखण्ड

7. जलवायु परिवर्तन के कारण आजीविका के सामने गंभीर चुनौतियां 25
- नीलो माली, उड़ीसा

8. बदलती जलवायु और कृषि की बढ़ती दुश्वारियां 28
- मधुकर सरप, महाराष्ट्र

9. बाढ़ क्षेत्र में फसलों का बदलता मौसम 31
- मोहित प्रसाद, उत्तर प्रदेश

10. जलवायु परिवर्तन से विकृत हुई जीवन की गुणवत्ता 33
- कोठाबाई, राजस्थान

11. जलवायु संकट से घिरा मछुआरा समाज 36
- दिलीप कुमार, उड़ीसा

12. अनदेखी व लापरवाही की मार झेलता मछुआरा समुदाय 39
- फुच्चीलाल सहनी, बिहार

13. बदलती जलवायु ने बदली खेती 41
- प्रेमपात्रो जानी, उड़ीसा

ज्यूरी

न्यायमूर्ति श्री व्ही.एस. दवे : आपने अपने कार्यकाल में कई उच्च न्यायिक पदों को सुशोभित किया। आप 1984 से 1994 तक उच्च न्यायलय में न्यायाधीश रहे तदोपरांत राजस्थान विधि आयोग के अध्यक्ष तथा राजस्थान उपभोक्ता विवाद निवारण समिति के अध्यक्ष के रूप में पद की गरिमा बढ़ाई। 1985 में आप गुजरात के साम्प्रदायिक दंगों के लिए गठित आयोग के अध्यक्ष रहे तथा 1994 में आपने लोकायुक्त के पद को गौरवांवित किया।

न्यायमूर्ति श्री पानाचंद जैन : आप राजस्थान उच्च न्यायालय के भूतपुर्व न्यायधीश हैं। आप पिछले 15 वर्षों से विभिन्न कानूनी व सामाजिक मुद्दों पर लेखन कार्य करते रहें हैं जो अग्रणी कानूनी पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। आपने पश्चिम बंगाल के सिंगूर, नंदीग्राम व अन्य जगहों में किसानों की बेदखली पर अंतर्राष्ट्रीय जन अदालत की अगुवाई भी की है।

न्यायमूर्ति श्री ए.के. श्रीवास्तव : न्यायमूर्ति श्री श्रीवास्तव अपने लंबे विधिक जीवन में दिल्ली उच्च न्यायालय से अवकाश प्राप्त हुए। श्री श्रीवास्तव सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय रिटायर्ड जज एसोसियेशन के महासचिव भी हैं।

डॉ. सईदा हमीद : डॉ. हमीद योजना आयोग की सदस्या हैं और महिलाओं व बाल अधिकार एवं अल्पसंख्यकों के अधिकार पर एक मजबूत आवाज़ हैं। डॉ. हमीद को वर्ष २००७ में पद्मश्री और २००६ में अल अमीन ऑल इण्डिया कम्युनिटी अवार्ड से सम्मानित किया गया है। इन्होंने मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय का नेतृत्व किया है और महिला आयोग व राष्ट्रीय द्वीप विकास प्राधिकरण की सदस्या भी रही हैं।

श्री टाकर मारडे : श्री मारडे अरुणाचल सरकार में ग्रामीण विकास और पंचायती राज मंत्री हैं। श्री मारडे इससे पूर्व अरुणाचल विधानसभा में उपाध्यक्ष भी रहे हैं।

श्री संजय पारिख : श्री पारिख सर्वोच्च न्यायालय में वरिष्ठ अधिवक्ता के रूप में अपनी सेवाएं दे रहे हैं। आप एक सामाजिक रूप से जागरूक अधिवक्ता हैं तथा पर्यावरण, खनन, बांध, जीएमओ नियमन व कृषि के विषयों पर कई जनहित याचिकाएं आपने दायर की हैं। वर्ष २००७ में पर्यावरण परिवर्तन के मुद्दे पर आयोजित राष्ट्रस्तरीय जनसुनवाई में व विश्व बैंक समूह पर आयोजित इंडिपेंडेंट पीपुल्स ट्रिब्युनल के ज्यूरी सदस्य रहे हैं। आप इण्डियन सोसायटी ऑफ इंटरनेशनल लॉ से भी लंबे अरसे से जुड़े रहे हैं।

प्रो. ए.आर.नम्बी : श्री नम्बी एक कृषि वैज्ञानिक हैं तथा एम.एस.स्वामीनाथन रिसर्च फाउण्डेशन के साथ कार्य करते हैं। श्री नम्बी नेशनल बायोडायवर्सिटी अथॉरिटी ऑफ इण्डिया के साथ-साथ विभिन्न सरकारी समितियों के सदस्य भी रहे हैं।

श्री हरि जय सिंह : श्री हरि जय सिंह वरिष्ठ पत्रकार, एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के अध्यक्ष, जिनका पत्रकारिता जगत में चार दशकों का अनुभव है, ट्रिब्यून एवं नेशनल हेराल्ड के पुर्व सम्पादक जिन्होंने अंशकालिक तौर पर बी.बी.सी., आकाशवाणी, दूरदर्शन के लिए काम किया, वर्तमान में पावरपॉलिटिक्स नामक पत्रिका के सम्पादक हैं।

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में तीन तथ्य साफ तौर पर स्थापित हो चुके हैं, पहला यह कि परिवर्तन हो रहा है, दूसरा कि इसे फिर से पहले जैसी स्थिति में नहीं लाया जा सकता अर्थात् अपरिवर्तनीय है और तीसरा, अब यह जलवायु संकट का रूप ले चुका है।

जहाँ दुनियाभर के वैज्ञानिक जलवायु परिवर्तन से संबंधित तथ्यों एवं इसके संभावित परिणामों पर एकमत नहीं हैं वहीं दुनिया का शीर्ष नेतृत्व भी इस विषय पर अपनी भूमिकाओं एवं जिम्मेदारियों से बचने की कोशिश करता हुआ नज़र आता है, जबकि विश्व के निर्धनतम, अल्प विकसित एवं अन्य कई छोटे द्वीपीय देश उस अपराध की सबसे ज़्यादा कीमत चुका रहे हैं जिसमें उनकी कोई भूमिका नहीं है। जलवायु संकट के मुद्दे पर विचार-विमर्श करने के लिए 192 देशों के प्रतिनिधि और राजनेता कनकून, मेक्सिको में इस माह आयोजित होने वाले कॉप 16 में लगभग दो सप्ताह के लिए फिर से एकत्रित होने जा रहे हैं, परंतु इस शीर्ष नेतृत्व ने पहले ही इस आयोजन से परे सोचना शुरू कर दिया है। उन्हें आशा है कि वर्ष 2011 में दक्षिण अफ्रीका में होने वाले कॉप 17 के आयोजन में कुछ सफलता हासिल होगी। परंतु तब तक काफी देर हो चुकी होगी।

राजनेताओं के पास दुनियाभर का समय है, पर घड़ी की सुई बढ़ती जा रही है और पूरी मानवता को ताक पर रखकर हम इंतज़ार नहीं करते रह सकते। जलवायु परिवर्तन से पहले ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संरक्षित अधिकारों जैसे भोजन, पानी एवं आवास का अधिकार, आजीविका एवं संस्कृति का अधिकार तथा पलायन एवं पुनर्वास से संबंधित अधिकार, और यहाँ तक कि "जीवन के अधिकार" का भी बड़े स्तर पर हनन कर चुका है। अब इस बात की संभवनाएँ भी साफ़ नज़र आने लगी हैं कि जलवायु परिवर्तन हमारे विकास की गति को प्रत्यक्ष तौर पर पर्यावरणीय दुष्प्रभावों के माध्यम से तथा एवं अप्रत्यक्ष रूप से इन परिस्थितियों के साथ हमारे अनुकूलन की क्षमता को घटाकर बहुत अधिक प्रभावित करेगा। विकसित देशों के गरीब लोग इसका समाधान जल्द से जल्द चाहते हैं। शीर्ष नेतृत्व को यह समझना चाहिए कि कुछ न करने की कीमत, कुछ करने की कीमत से अधिक चुकानी होगी। लोग सभी संभावित माध्यमों जैसे कि झूठी अदालतों, लोक न्यायाधिकरणों और अन्य संभव सभ्य तरीकों से जलवायु परिवर्तन के अभियुक्तों और राष्ट्रीय सरकारों के ख़िलाफ़ अपनी कुण्ठा और क्रोध को प्रदर्शित कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त पर्यावरण प्रदूषण के प्रति सरकार को ज़िम्मेदार ठहराने के लिए जलवायु परिवर्तन से जुड़े प्रभावों पर मुकदमों की शुरूआत भी हो चुकी है।

इस पुस्तिका में जलवायु परिवर्तन के भयावह परिणामों से पीड़ित विभिन्न प्रदेशों के भिन्न-भिन्न समुदायों के लोगों की कहानियों को संग्रहित किया गया है जिनमें मानवाधिकार हनन, विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों और स्थानों - जो बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं - की स्थितियों को उन्हीं के शब्दों में व्यक्त किया गया है। जलवायु संकट के ये पीड़ित ट्रिब्यूनल के समक्ष अपनी कहानी इस उम्मीद के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं कि विकसित देशों की और राष्ट्रीय

सरकार का ध्यान उनकी पीड़ा/दुश्वारियों की ओर जाएगा और वे इसके लिए जिम्मेदार लोगों पर कोई कार्यवाही करेंगे व जलवायु परिवर्तन के तथ्यों पर कोई कारगर योजना बनाएंगे। ट्रिब्यूनल को आशा है कि सरकार और लोग जलवायु परिवर्तन के विषय पर अधिकार आधारित दृष्टिकोण से सोचना प्रारंभ करेंगे। हम यह भी आशा करते हैं कि दुनिया का शीर्ष नेतृत्व भी कॉप बैठक में जलवायु संकट से पीड़ित जन-समुदाय की पीड़ा की ओर और अधिक गंभीरता से ध्यान देगा और इस संदर्भ में गंभीरता व प्राथमिकता प्रदर्शित करेगा।

नाम	:	अनिमेश गिरी
उम्र	:	35 वर्ष
व्यवसाय	:	कृषि
पता	:	ग्राम पाथर प्रतिमा, जिला 24 परगना, सुंदरबन, पश्चिम बंगाल

कृषि, पशुपालन व जीवनयापन की कठिनाइयां

मैं जिला 24 परगना, सुंदरबन के बड़े विकासखंडों में से एक पाथर प्रतिमा का किसान नेता अनिमेश गिरि हूँ। यहाँ रहने वाले अधिकांश लोग छोटे किसान और मछुआरा समुदाय के हैं। चक्रवात, मिट्टी की अत्यधिक लवणता और पानी के भराव ने हमारे गांव सहित पूरे सुंदरबन को हाशिये पर लाकर खड़ा कर दिया है।

सुंदरबन संसार के सबसे असुरक्षित पारिस्थितिकी क्षेत्रों में से एक है। यहाँ किसी न किसी प्राकृतिक आपदा के आने का डर हमेशा ही बना रहता है। यह एक बाढ़ प्रभावित क्षेत्र है। यहाँ मीठा पानी, दलदल और विभिन्न प्रकार के वनस्पतियों से भरा हुआ जंगल है, जो 10 हजार किमी के क्षेत्र में फैला हुआ है। निम्न स्तर का विकास, आधारभूत संरचनाओं का अभाव, अत्यधिक गरीबी, ऊर्जा की मांग अत्यधिक होने के बाद भी उसकी कम उपलब्धता, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव, संक्रामक और पानी से होने वाली बीमारियों डायरिया, मलेरिया आदि की अधिकता इस क्षेत्र की कमजोरियाँ बन चुकी हैं।

तापमान में परिवर्तन : पिछले दो-तीन वर्षों में क्षेत्र के तापमान में बहुत अधिक बदलाव आया है। यहां ग्रीष्म ऋतु के साथ ही शीत ऋतु का तापमान भी पहले की तुलना में काफी बढ़ गया है। इस वर्ष गर्मी पिछले कुछ वर्षों की तुलना में बहुत अधिक भीषण थी। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव ऋतु चक्र पर भी पड़ा है। वसंत तो अब नजर ही नहीं आता और पतझड़ के काल में भी कमी आई है।

वर्षा की दशाओं में बदलाव : हमारे क्षेत्र में वर्षा की दशाओं में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। विशेषतः पिछले दो वर्षों में वर्षा बहुत अनियमित हो गई है। इसकी आवृति और मात्रा में बदलाव आया है, यद्यपि वर्षा ऋतु के काल में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं आया लेकिन वर्षा की मात्रा बढ़ गई है। विशेषकर पिछले तीन-चार वर्षों में बिजली की कड़क और बादलों की गरज के साथ 6-7 दिनों तक चलने वाली मूसलाधार बारिश अब एक-दो दिन के लिए ही आती है। इस वर्ष बारिश 20-25 दिन देरी से आई।

तीव्र जलवायु घटनाएँ : चक्रवात, दबाव, चक्रवातीय तूफान, प्रचण्ड तूफान की घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। उदाहरण के लिए पिछले दो वर्षों में हमने तीन बड़ी प्राकृतिक आपदाओं सिद्र, नरगिस और आईला का सामना किया है। इन आपदाओं के परिणामस्वरूप क्षेत्र का एक बड़ा भूखंड खारे पानी में डूब गया।

भू-क्षति : जिन द्वीपों पर लोगों ने अपना आवास बनाया हुआ था, प्राकृतिक आपदाओं के कारण उनकी भारी भू-क्षति हुई है। इन द्वीपों का 60 प्रतिशत हिस्सा जलमग्न हो गया है। यह संपूर्ण क्षेत्र भौतिक रूप से निचले डेल्टा

मैदानों से घिरा हुआ है, जिनका निर्माण मानसूनी और चक्रवातीय घटनाओं के फलस्वरूप हुए अवसादन से हुआ है। बारिश और चक्रवातीय घटनाओं की संरचना में आने वाले परिवर्तनों ने इस आवासीय स्थान पर सीधा प्रभाव डाला है।

कृषि कार्यों पर प्रभाव : जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव हमारी कृषि पर पड़ा है। फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों का हमला तो बढ़ा ही है, साथ ही ब्लास्ट जैसी बीमारियों का प्रकोप भी फसलों पर बढ़ गया है। संभवतः इसका कारण बादलों का अधिक समय तक छाया रहना हो सकता है। साथ ही रसासनों के अत्यधिक प्रयोग ने भी मिट्‌टी और पौधों की बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता को कम किया है। खेती पर आने वाली लागत में वृद्धि हुई है लेकिन उससे होने वाली आय में आशा के अनुरूप वृद्धि नहीं होने के कारण कृषि लाभकारी नहीं रही। वर्ष 2004 में खेती पर आने वाला खर्च 3600 रुपये था और आज यह पहले की तुलना में लगभग दो गुना बढ़कर 6000 रुपये तक हो गया है। वहीं 2004 में जहां हम प्रति एकड़ 90 किलोग्राम तक (अधिक उपज वाली प्रजाति) चावल प्राप्त करते थे, वहां अब सिर्फ 66 किग्रा प्रति एकड़ ही मिल रहा है। अभी हाल ही दक्षिण से आने वाली एक हवा ने धान की कटने के लिए तैयार खड़ी फसल को नष्ट कर दिया। यह ध ाान की खेती के लिए अच्छे संकेत नहीं है। फलों के उत्पादन के मामले में भी नए पेड़ तो अभी अच्छी फसल दे रहे हैं लेकिन पुराने पेड़ों का उत्पादन पिछले 3-4 वर्षों में बहुत घट गया है।

पशु पालन पर आने वाले खर्च में भी बहुत अधिक वृद्धि हुई है। पहले पशुओं के चरने के लिए यहाँ बड़ी मात्रा में चारागाह उपलब्ध थे लेकिन अब उनमें से अधिकांश या तो नदियों में डूब गए हैं या फिर उनमें अब पशुओं के चरने के लिए चारा ही नहीं बचा है। इससे पशुओं के चारे और उन्हें होने वाली बीमारियों के इलाज पर आने वाले खर्च बढ़ गया है।

पीने योग्य पानी की उपलब्धता भी घटती जा रही है। यहाँ पर जमीन में 15 से 20 फिट गहरे कई नलकूप लगाए हैं। इनके कारण भूमि में दरारें पड़ने लगी हैं। ठंड और गर्मी के मौसम में हमें अक्सर इन नलकूपों से खारा पानी प्राप्त हो रहा है।

जीवन यापन में कठिनाई : जलवायु परिवर्तन ने यहाँ के जलीय जीवन पर भी विपरीत असर डाला है, जिससे यहाँ बसने वाले मछुआरा समुदाय पर आजीविका का खतरा मंडराने लगा है। 10 वर्ष पहले तक मछुआरा महीने में 15 दिन ही मछली पकड़ने का काम करता था और इससे वह कम से कम 1000 रुपये की आय प्राप्त करता था। लेकिन पिछले 2-3 वर्षों में उनकी आय 300 से 400 रुपये तक पर ही सिमट कर रह गई है। पहले सामान्यतः एक मछुआरा मछली पकड़ने के काम से साल के 8 महीने अपना जीविकोपार्जन अच्छी तरह से कर लेता था। परंतु अब प्रकृति में हुए परिवर्तनों के कारण मछली पकड़कर अपने जीवन का निर्वाह करना उसके लिए मुश्किल हो रहा है। जिस काम से पहले वह साल के आठ महीने आराम से अपना घर चला पाता था अब उस काम से 2-3 महीने का भी खर्च नहीं निकाला जा रहा। नदियों का जल स्तर बढ़ जाने के कारण ऐसे उथले स्थान अब कम हो गए हैं जहाँ से ये मछुआरे मछली पकड़ा करते थे। नदियों के किनारों पर मिट्‌टी और गाद जमा होने के कारण बीच में उनकी गहराई बढ़ गई है। इस क्षेत्र की नदियों में पाई जाने वाली मछलियों की कई प्रजातियाँ जैसे हिल्सा,

पॉम्फ्रेट, मेकरिल, चकलि (क्षेत्रीय नाम), बॉल (क्षेत्रीय नाम), सिम्यूल (क्षेत्रीय नाम), मेड (क्षेत्रीय नाम), तारा आदि की संख्या बहुत कम हो गई है। इन मछुआरों के लिए आय और जीवन यापन के साधन के रूप में अब केवल लोट (lote) मछली ही एक मात्र विकल्प है। मछुआरे छोटी जाली वाले जाल का उपयोग कर रहे हैं जिसमें नदियों में पाए जाने वाले छोटे-छोटे जीव और छोटी मछलियां भी फंस जाते हैं। लेकिन इनका कोई व्यवसायिक उपयोग न होने के कारण इन्हें वापस नदियों में छोड़ना पड़ता है।

हमारी आजीविका के स्त्रोत और विपत्ति के समय ढाल बनकर हमारी रक्षा करने वाले वनस्पति को भी गैरकानूनी ढंग से काटा जा रहा है। इस कटाई ने हमारी नदियों के बाँध को बहुत अधिक नुकसान पहुंचाया है।

हमारी कृषि को बचाने के प्रयास किए जाएँ। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग के साथ ही अतिरिक्त सिंचाई और ईंधन पर आधारित कृषि पर रोक लगाई जाए। पारंपरिक बीजों के उपयोग को प्रोत्साहन दिया जाए जिससे ऊर्जा की खपत को कम किया जा सके। वनस्पितियों के रोपण के प्रयास किए जाएँ। जल और वन संसाधनों के अनुचित ढंग से होने वाले अत्यधिक दोहन पर रोक लगाई जाए।

नाम	:	अजंता
उम्र	:	38 वर्ष
व्यवसाय	:	मछली पकड़ना
पता	:	ग्राम नागई, जिला नागापट्टनम, तमिलनाडु

तटीय जीवन पर गहराता संकट

मेरा नाम अजंता है। मैं कराय जिला मछुआरिन संघ, नागई की प्रतिनिधि के रूप में यहां आई हूँ। हमारे मछुआरिन संघ में 12000 से अधिक सदस्य हैं।

जलवायु परिवर्तन : पिछले 10-15 सालों में इस क्षेत्र की जलवायु में बहुत अधिक बदलाव देखे जा रहे हैं। बरसात बहुत कम हो गई है व समय पर नहीं आ रही है या गलत समय पर आ रही है जिससे बहुत नुकसान हो रहा है। तापमान बहुत तेजी से बढ़ रहा है और लू भी चलती है और शीत लहर भी। मानसून पूरी से अनियमित और नाकाम हो गया है। ठंड और गर्मी दोनों की तीव्रता बढ़ी है। वर्षा की मात्रा बहुत ही कम हो गई है। हवा की दिशा व रफ्तार भी अनिश्चित हो गई है और बढ़ गई है।

जलवायु परिवर्तन का जीवन पर प्रभाव : पिछले तीस साल में हवा और लहरों से नागापट्टीनम जिले का समुद्री किनारा पूरी तरह क्षतिग्रस्त व बदल गया है। इस अवधि में समुद्रतट की 200 से 1500 मीटर भूमि क्षरित हो गई है। घर पानी में डूबे हैं और नारियल के जो पेड़ जो तटों पर हुआ करते थे, अब समुद्र में हैं। पूमपुरकर गाँव में स्थित कनागी की मूर्ति तीस साल में अपने मूल स्थान से 3 बार स्थानांनतरित की जा चुकी है।

इसी अवधि में, जगतनापट्टिनम में भी समुद्र का पानी अंदर तक आया है और एक समय जहां बसाहट थी, वहां आज पानी है। उसी तरह, रामनाथपुरम के धनुशकोडी क्षेत्र मे लगभग 1000 मीटर जमीन समुद्र में विलुप्त हुई है। थिरूवरूर जिले के मुट्ठुपिट्टई गाँव में नदियों की चौड़ाई घट रही है जो 200 मी. से घट कर 50 मी. तक रह गई है।

तिरूनेलवली जिले में पहले समुद्री किनारों पर प्राकृतिक रूप से रेत जमा होती थी। वर्तमान में रेत जमा होने की दर में कमी आई है। एक अतिरिक्त समस्या यह है कि इस क्षेत्र की रेत में कुछ खनिजों के पाए जाने के बाद कुछ निजी संस्थाओं ने रेत का उत्खनन शुरू कर दिया है जिससे भूक्षरण का खतरा बढ़ गया है। इन तटीय प्रदेशों में 300 मीटर तक मृदा का कटाव हुआ है।

कन्याकुमारी के तटीय इलाकों में थोरियम नामक यौगिक मिलने के बाद यहाँ सरकार भी रेत के उत्खनन में शमिल हो गई है जिसके फलस्वरूप 30 साल पहले की तुलना में तटीय किनारे 1200 मीटर तक कट गए हैं। काली और लाल मिट्टी का जमाव भी पहले की तुलना में काफी कम हो गया है।

त्रिवल्लूर जिले के तटीय क्षेत्र रेत क्षरण की समस्या से गंभीर तौर पर ग्रस्त हैं। इन्नौर से रायपुरम तक तो समुद्र से रेत गायब ही हो गई है। रेत के कटाव को रोकने के लिए यहाँ के समुद्री किनारों पर पत्थर डाले गए हैं। लेकिन इस प्रयास के बावजूद रेत का कटाव नहीं रोका जा सका। नागापट्टीनम जिले में हमारे अन्य कामों के लिए उपलब्ध स्थान भी घट रहा है। समुद्रतट पर पहले हम मछली व जाल सुखाने तथा किश्ती रखा करते थे पर अब यह संभव नहीं हो रहा है। रेत के कटाव को रोकने के लिए पत्थरों को समुद्र में फेंके जाने के कारण मछुआरों के लिए किनारों पर अपनी नाव और जाल को रखना असंभव हो रहा है। जाल को सुखाने के लिए भी स्थान सीमित हो गया है।

जगन्नाथपट्टीनम में पहले जाल और मछलियों को सुखाने के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध था लेकिन अब यहाँ मछलियों को सुखाने के लिए मात्र 100 मीटर की जगह ही बची है।

रामनाथपुरम में पहले खूबसूरत समुद्री किनारे हुआ करते थे, जो अब घटते जा रहे हैं। समुद्र की अप्रिय और विषम परिस्थितियों के कारण धनुश्कोडि में मछुआरे अपनी जाल और नाव को समुद्र किनारे से 200 मीटर दूर रखते हैं।

अरब सागर से उठने वाले मानसून में गड़बड़ी के कारण कन्याकुमारी के तटीय प्रदेशों के मौसम में काफी बदलाव आया है। जिले के अलग-अलग क्षेत्रों में समुद्री अपरदन के तरीकों में भी अंतर है।

तटीय भूमि और पारिस्थितिकी पर प्रभाव : आज से 30 साल पहले तक नागापट्टीनम जिले के सेरूधुर में 20-20 फिट ऊँचे रेत के टीले हुआ करते थे। ये रेत के टीले समुद्री अपरदन और अन्य प्राकृतिक आपदाओं से हमारी रक्षा करते थे। तेज बारिश, बाढ़ और चक्रवात के समय ये टीले इन आपदाओं के प्रभाव को कम करते थे और तटीय प्रदेशों में बसने वाले लोगों की इन आपदाओं से रक्षा करते थे। ये टीले सूनामी की लहरों को छितराकर उनका असर कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। जब हवाएँ उत्तर से पूर्व की ओर चलती हैं, तब अडापनकोडि और स्पिकी जिसे गुंडूमुल भी कहा जाता है, नामक पौधे इन हवाओं के साथ आने वाले रेत के कणों को रोककर रेत के टीलों के निर्माण का कारण बनते थे। इन दिनों ये पौधे बहुत कम हो गए हैं, जिसके कारण अब रेत के टीलों का निर्माण नहीं हो रहा है।

अप्रवाहित जल में मछलियों की पैदावार अधिक होती है। ऐसे स्थानों पर जहाँ ताजा पानी व खारा पानी मिलता है, मछलियाँ बहुतायत में पाई जाती हैं। कावेरी नदी की सहायक नदियाँ जिस स्थान से समुद्र में जाकर मिलती हैं, वह स्थान जाम हो गया है। जिससे नदियों के पानी का समुद्र में प्रवेश प्रभावित हुआ है। इसी प्रकार अन्य समुद्री संसाधन भी बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। तिरूवल्लूर और पुथ्थुकुट्टई जिले में अप्रवाहित जल में रेत के जमा होने के कारण कई नदियों के मुहाने बंद हो गए है। इन नदियों में रेत के साथ काफी मात्रा में मिट्टी और कीचड़ जमा होने के कारण इनका बहाव रुक गया है।

कन्याकुमारी जिले के इराईमनथुरई नामक स्थान पर थमिराभरानी नदी समुद्र में प्रवेश करती है। पिछले कुछ वर्षों में नदी के प्रवाह में बदलाव के कारण अपरदन तो बढ़ा ही है साथ ही किनारों और उन पर बने मकानों को भी क्षति पहुँची है।

समुद्र तल पर प्रभाव : मैनग्रोव विकास के लिए दलदली भूमि उपयुक्त होती है और यही मछलियाँ द्वारा प्रजनन के लिए सही स्थान होता है। ये मैनग्रोव तूफान व सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाओं के समय ढाल बनकर हमारी रक्षा करती हैं। ये कितनी भी ज्यादा बारिश सह लेती हैं। लेकिन इधर तापमान में अत्यधिक वृद्धि के कारण मैनग्रोव वनों में लगातार कमी आ रही है। औद्योगिक अपशिष्ट और झींगा उद्योग ने भी इन्हे प्रभावित किया है। और कुल मिल कर मत्स्य उत्पादन प्रीाावित हो रहा है।

नाम	:	लक्ष्मणसिंह नेगी
उम्र	:	38 वर्ष
व्यवसाय	:	कृषि
पता	:	ग्राम पिल्खी, विकासखंड जोशीमठ, जिला चमोली, उत्तराखंड

प्रभावित होती आजीविका, सामाजिक गतिविधियां और कठिनतम होता जीवन

मै लक्ष्मण सिंह नेगी गांव पिल्खी, विकासखण्ड जोशीमठ, जिला चमोली उत्तराखण्ड का निवासी हूँ। करीब 4800 फीट की उंचाई पर स्थित, हमारा गांव छोटा ही है जिसमे 14-15 परिवार ही हैं। मैं एक सीमान्त कृषक हूँ। मेरे परिवार की करीब 15 नाली (करीब 6 बीघा) जमीन है जिसमें हम मिश्रित खेती कर धान, गेहूँ, रामदाना, राजमा, सरसों, खीरा, हल्दी, धनिया, मिर्च आदि उगाते हैं। पिछले 10 वर्षों से मैं अपने इलाके मे कार्य कर रही एक सामाजिक संस्था, जयनन्दा देवी स्वरोजगार शिक्षण संस्थान 'जनदेश' से भी जुड़ा हूँ।

9 नवंबर 2000 मे स्थापित पर्वतीय राज्य उत्तराखण्ड में जनपद चमोली उच्च हिमालयी क्षेत्र है। हमारे जनपद में सदाबहार बर्फीली चोटियों की श्रृंखला है और यहीं हिन्दु धर्म की आस्था के कई तीर्थ स्थित हैं, जिनमें प्रमुख है बद्रीनाथ धाम। हमारे जनपद में ही कई प्रमुख नदियों का उद्गम है जिनमें सबसे बड़ी है अलकनंदा। इस नदी में छोटी नदियों के अलावा, पांच बड़ी नदियों का संगम पड़ता है जिनमें से पांचवा संगम देवप्रयाग पर भागीरथी से मिलने के बाद दोनों गंगा कहलाती हैं।

हमारा समाज मुख्यतः कृषक समाज है और ज़्यादातर लोग छोटे किसान हैं। अनाज के अलावा, फल व मसालों का भी अच्छा उत्पादन होता है। गाय-भैंस लगभग हर परिवार मे होती हैं और कुछ परिवार भेड़-बकरियां भी पालते हैं। जंगलों से भी अपनी जरूरत के लिए हमें कुछ मिलता है और कुछ कच्चा माल जैसे रिंगाल से विभिन्न आकार-प्रकार की टोकरियां आदि बनाना कई परिवारों का पारंपरिक रोजगार है। प्राकृतिक सौन्दर्य व धार्मिक स्थलों की वजह से यहाँ पर्यटन से भी कई लोगों की आजीविका चलती है। तो ये सभी हमारे लोगों की आजीविकाओं के मुख्य जरिए हैं।

उच्च क्षेत्र होने की वजह से यहां सामान्य तौर पर वर्षा अधिक होती है, सर्दियों में मौसम काफी ठंडा रहता है और नवम्बर से फरवरी के बीच बर्फ भी गिरती है। और यहां की जलवायु, व विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण हम लोगों को अपनी आजीविका और जीवनयापन हेतु बहुत संघर्ष करना पड़ता है।

मैं साफ तौर पर महसूस करता हूं कि पिछले 10-20 सालों में हमारा जीवन कठिन से कठिनतर होता जा रहा है और इसका बहुत बड़ा कारण हमारे यहां तेजी से बदल रहा मौसम है। मौसम बदल ही नहीं रहा, बल्कि बहुत अनिश्चित हो गया है। हमारी कृषि व सामाजिक गतिविधियां अक्सर मौसम पर आधारित होती हैं और पहले हमारा सब काम अक्सर उसी अनुरूप सुचारू रूप से चलता था - हल लगाने का समय, बीज बोने का समय आदि

सभी पूर्व-निर्धारित होते थे। यहां तक कि हमारा पूरा ज्ञान व जीवनयापन मौसम की उसी नियमित सुनिश्चितता पर आधारित था, पर अब हम कुछ भी अंदाज नहीं लगा पा रहे हैं कि कब सूखा पड़ेगा, कब सामान्य रहेगा। बारिश का पता नहीं लग रहा है कि कब आएगी, या आएगी भी कि नहीं; या आएगी तो कितनी आएगी और रिमझिम आएगी या मूसलाधार आएगी। पहले पहाड़ों मे बरसात में झड़ लगती थी यानि कि रिमझिम होती थी जिससे हमारी फसलें सही तरह से पक जाती थीं। अब मूसलाधार होती है, चार दिन की बारिश एक ही दिन में हो जाती है। उससे नुकसान ही हो रहा है।

जिस साल गर्मी अधिक होती है उस साल सूखे की स्थिति हो जाती है और अगर बारिश आकस्मिक या तेज होती है तो त्वरित बाढ़ एवं भूस्खलन की स्थिति पैदा कर देती है तथा सर्दियों में हम लोगों को शीत लहर से जूझना पड़ रहा है। मौसम की अनिश्चितता का ताजा उदाहरण इस साल अगस्त-सितम्बर में अत्यधिक वर्षा होना है जिससे पूरे इलाके मे भारी नुकसान हुआ है। विडंबना यह है कि इतनी बारिश होने के दो-एक महीने बाद ही आजकल पानी की कमी फिर सताने लगी है। बारिश का पानी ज़मीन में नहीं समाया बल्कि तेजी से नीचे बह गया। यह काफी कुछ हमारे इलाकों मे जंगलों के कटान से भी हुआ है।

पहले कभी इस तरह की बारिश होती थी तो हमारा मानना है कि जाड़ों में अच्छी बर्फ पड़ेगी, पर हम अब पक्का नहीं कह सकते कि इस साल की अत्याधिक बारिश के बाद जाड़ों मे क्या स्थिति होगी।

हमारे इलाके मे बर्फ गिरना बहुत कम हो गया है। 1990 तक मुझे याद है कि मेरे गांव में 3–4 फीट तक बर्फ पड़ जाया करती थी जो काफी दिनों तक बनी रहती थी। अब बर्फ कुछ ही इंच पड़ती है, और वह भी एक-दो दिन ही टिकती है। और वह भी अक्सर अब दिसंबर में नहीं पड़ती बल्कि फरवरी-मार्च तक जाकर पड़ती है।

इन सबसे हमारी खेती पर बहुत बुरा असर पड़ा है। पहाड़ी खीरा बड़े आकार का व बहुत रसीला होता है पर मैं अपने खेत में देख रहा हूं कि उसका पौधा बहुत देर से पनप रहा है, जिसकी वजह से वह जल्दी बूढ़ा हो रहा है। ऐसे में वह न तो पहले जैसा आकार पा रहा है, न ही उसमें पहले जैसी मिठास रही है। यही हाल कद्‌दू का भी है।

बर्फ के न होने से हमारी जाड़ों की फसल अक्सर सूखाग्रस्त हो जा रही है। मेरा परिवार आलू व मटर बो तो रहे हैं पर इधर कुछ सालों से जाड़ों मे बर्फ न पड़ने से सूख जा रहे हैं, यहां तक कि उनकी फसल काटी ही नहीं जा रही है। सरसों की फसल भी न के बराबर हो पा रही है। फसल की गुणवत्ता में भी कमी आ रही है।

बारिश की अनिश्चितता और सूखा से फसल के पकने का समय भी आगे-पीछे हो गया है, या फिर पौधों पर बालियां कम हो रही हैं और बालियों मे दाने कम। साल भर में मेरे परिवार मे जितनी फसल होती थी, अब उससे आधी या थोड़ा ही ज्यादा हो पा रही है। गांव में जल स्रोतों के सूखने का क्रम निरन्तर बढ़ता जा रहा है। पिछले इन 10-15 सालों मे हमारी खाद्य सुरक्षा का गंभीर प्रश्न खड़ा हो गया है।

मेरे निकटवर्ती गांवों मे, जहां सेब का अच्छा उत्पादन होता था, मैं देखता हूं कि वहां हर साल कम से कम सेब हो रहा है। यह इसलिए कि उस पर फूल बेमौसम खिल जा रहा है जिससे उस पर फल कम, कमजोर व

रोगग्रस्त हो रहे हैं। यह उन परिवारों के लिए विकट समस्या है जिनके लिए सेब आय व आजीविका का एक अच्छा साधन था। अब, मैं देखता हूं कि सेब सिर्फ 7500 फीट के उपर के गांवों में हो पा रहा है।

हमारे जंगलों में भी अब हमे पहले से कम उत्पाद मिल पा रहे हैं, और हमारे व आसपास के गांवों मे रिंगाल की चीजें अब उतनी ज्यादा नहीं बन रही हैं जितना पहले बनती थीं क्योंकि जंगल से अब कच्चा माल कम प्राप्त हो रहा हैं

उपाय साधन

मैं सोचता हूं कि इन परिस्थितियों में जैविक खेती एक समाधान हो सकती है। हमारे पूरे क्षेत्र मे जहां आलू, राजमा व रामदाना के उत्पादन मे काफी कमी आई है, हम देख रहे हैं कि पड़ौसी गांव पल्ला में आलू, राजमा तथा चौलाई का उत्पादन बढ़ा है और आपदाओं से उनका नुकसान भी कम हुआ है। इसका मुख्य कारण है कि वहां पर आज भी जैविक खेती की जाती है तथा गांव, वनों से घिरा हैं।

अतः जिस संस्था से मैं जुड़ा हूं, वह कुछ सालों से इस दिशा मे काम कर रही है। जल व बीज संरक्षण को लेकर पदयात्राएं की गई हैं। विलुप्त पारंपरिक जल स्त्रोतों को पुनर्जीवित करने व स्थानीय वृक्षारोपण का भी काम किया गया है। मुझे उम्मीद है कि इस से कुछ तो बिगड़ती स्थिति की रफ्तार को हम रोक पाएंगे।

लेकिन सबसे जरूरी है कि इस तरह के संरक्षण कार्य को लेकर सरकारी नीतियां व कार्यक्रम सहायक हों, जैसा कि अभी है नहीं।

दरअसल, जलवायु परिवर्तन की उपरोक्त घटनाओं तथा उनसे मेरे साथ-साथ स्थानीय निवासियों के जीवन, आजीविका एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों हेतु मुख्य दोषी हमारी सरकारें (केन्द्र एवं राज्य) और उनकी दोषपूर्ण विकास नीतियां हैं। हमारा कृषि विभाग भी दोषी है, जो हमें अपने क्षेत्र के अनुरूप खेती करने के लिए हतोत्साहित करता है व अंसगत व प्रतिकूल खेती को बढ़ावा दे रहा है। इनके चलते जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया व प्रभाव बढ़ रहे हैं।

इन सभी दोषियों पर जलवायु परिवर्तन से लोगों को हो रहे नुकसान की भरपाई के लिए तथा उन्हें भविष्य मे सक्षम बनाने के लिए जवाबदेह बनाया जाना चाहिए।

नाम	:	प्रभाती देवी
उम्र	:	41 वर्ष
व्यवसाय	:	कृषि
पता	:	ग्राम सूरज का खेड़ा सोसायटी, विकासखंड निवई, जिला टोंक, राजस्थान

बदलते मौसम के साथ बदलती स्थितियां

मेरा नाम प्रभाती देवी है। मैं टोंक जिले के निवई विकासखंड के ग्राम सूरज का खेड़ा की निवासी हूँ। मैं इस गाँव में तीस साल पहले श्री हारजीराम से शादी होने के बाद आई थी। हमारे परिवार में दो बेटे, 6 बेटियाँ, एक वधु और दो पोतों को मिलाकर 13 सदस्य हैं। इनमें से केवल तीन लोग ही कमाते हैं। जीवनयापन का एक बड़ा हिस्सा हमें हमारे 6 बीघा के एक छोटे से खेत से प्राप्त होता है। हमारे पास दो भैंसे और एक बकरी भी है। इनसे प्राप्त होने वाले दूध का उपयोग हम सिर्फ घर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही करते हैं। मेरे गाँव में कुल 25 परिवार निवास करते हैं, ये सभी बैरवा और बागरिया समुदाय के हैं।

मौसम में बदलाव : आज से तीस साल पहले जब बारिश अच्छी और सामान्य हुआ करती थी, हमारा गाँव हरी-भरी वनस्पतियों और चारागाहों से घिरा हुआ था। वृक्षों की उपयोगी क्षेत्रीय किस्में जैसे चीला, खेजरी, बेर, खजूर आदि की बहुतायत थी। पिछले दो दशकों में हमारे गाँव के मौसम में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। अनियमित बारिश, भीषण गर्मी और सूखे ने हमारे गाँव की हरियाली को निगल लिया है। पहले बारिश की एक नियमित और निश्चित संरचना थी। बारिश के मौसम के लिए ''चौमासा'' शब्द का उपयोग किया जाता था। जिसका अर्थ होता है चार महीने, अर्थात पहले पूरे चार महीने तक बारिश होती थी। एक साथ कई-कई दिन तक लगातार बौछारें पड़ती थीं, जिससे भूमिगत जल स्तर तो बढ़ता ही था साथ ही घास और छोटे-छोटे पौधों को पोषण भी मिलता था। मिट्टी को नमी और उर्वरक तत्व प्राप्त होते थे। इसके परिणाम स्वरूप कुओं और तालाबों में पानी की पर्याप्त मात्रा के साथ ही मिट्टी की नमी भी लंबे समय तक बनी रहती थी। अब इन बौछारों का स्थान अल्प समय के लिए आने तीव्र बारिश ने ले लिया है। जो बड़े स्तर पर मृदा के अपरदन और वनस्पति की हानि के लिए जिम्मेदार है। हमारे गाँव में लगभग 15 कुएँ हैं, जिनमें 15 से 20 साल पहले तक 15 से 20 फिट की गहराई पर पानी उपलब्ध था। इनमें से 5 कुएँ तो अब पूरी तरह से समाप्त हो चुके हैं और जो शेष बचे हुए हैं उनमें जलस्तर 45 से 50 फिट नीचे उतर गया है। सरकार और गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा हमारे खेतों की सिंचाई के लिए कई निर्माण किए गए हैं। पिछले वर्षों तक ये हमारे लिए बहुत उपयोगी थे लेकिन अब हमारे लिए इनका कोई उपयोग नहीं बचा है। अल्प वर्षा ने इन्हें हमारे लिए अनुपयोगी बना दिया है।

पहले हम अक्टूबर और नवंबर के महीने से ही गर्म कपड़े पहनना शुरू कर देते थे। अब हमें ऊनी कपड़ों की आवश्यकता देर से पड़ती है। वातावरण दिन-प्रतिदिन गर्म हो रहा है। गर्म महीनों की संख्या लगातार बढ़ रही है।

अब ग्रीष्म ऋतु का काल बढ़कर आठ माह हो गया है, शीत ऋतु 2 से 3 माह और शेष समय बारिश होती है।

हमारे गाँव के किसान मानसून का अंदाजा पुरानी पारंपरिक विधियों और संकेतों से लगाते थे। उदाहरण के लिए चीला और खैर के वृक्षों में बड़ी संख्या में फूलों का आना अच्छे मानसून का संकेत माना जाता था। यदि टिटहरी (एक पक्षी) किसी ऊँचे स्थान पर अपने अंडे दे तो इसका अर्थ था कि इस बार बारिश अच्छी होगी लेकिन इसके विपरीत यदि वह मैदान में अंडे दे तो उस वर्ष सूखा पड़ना निश्चित था। लेकिन अब यह परंपरागत ज्ञान अनुपयोगी हो गया है। ये भविष्यवाणियाँ आज के अव्यवहारिक जलवायु चक्र पर लागू नहीं होतीं।

कृषि पर प्रभाव : नियमित रूप से बढ़ रहे तापमान ने बीजों की अंकुरण क्षमता को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। पहले गेहूँ और जौ के एक बीज से 4-5 अंकुर फूटते थे, जो अब घटकर 2 से 3 ही रह गए हैं। इसके परिणामस्वरूप किसानों को प्रति एकड़ अधिक बीजों की बुआई करनी पड़ रही है। गर्मी के कारण पौधों के आकार में भी कमी आई है। पौधों का आकार घट जाने के कारण पशुओं के लिए उपलब्ध चारे की मात्रा भी घट गई है। अब गेहूँ के पौधों में दिसंबर माह से ही बालियाँ आनी शुरू हो जाती हैं जबकि पहले जनवरी के महीने में बालियाँ आती थीं। करीब तीन दशक पहले तक हमारी जमीन बहुत उपजाऊ थी। हमारी फसलों की पैदावार अधिक थी। अनियमित वर्षा ने धीरे-धीरे हमें अपने खेतों में रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के लिए मजबूर किया। इन उर्वरकों ने हमारी जमीन की उर्वराशक्ति को घटा दिया है। मिट्टी से केंचुए व अन्य जीवों के कम हो जाने के कारण भी हमारी जमीन की उर्वरा शक्ति प्रभावित हुई है।

पहले हम एक बीघा (1 बीघा = 0.4 हे.) से लगभग 15 मन (1 मन = 40 किग्रा) तक मक्का प्राप्त करते थे। अब पैदावार इतनी कम हो गई है कि एक बीघा से 8—10 मन मक्का ही प्राप्त हो रहा है। हमारी परंपरागत फसलों कठिया गेहूँ, मूंगफली, सोरघम, पर्ल मिलेट, क्लस्टर बीन, हरी मूंग, काली मूंग, और चना आदि का स्थान ऐसी फसलों ने ले लिया है जिन्हें पानी की आवश्यकता कम होती है। इन फसलों में मोथ बीद, सीसामम, हरी मूंग (60 दिन वाली किस्म), सरसों और सफेद सरसों शामिल है। ये फसलें कम पौष्टिक होने के साथ ही बीमारियों के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील भी हैं। इन फसलों को कीटों और बीमारियों के बचाने के लिए कीटनाशक दवाओं पर बहुत अधिक खर्च करना पड़ता है। पहले हमारे पास 5 गाय, 2 बैल और 20 बकरियाँ थीं। इनसे हमें घरेलू और व्यवसायिक उपयोग के लिए पर्याप्त मात्रा में दूध प्राप्त होता था। पानी की कमी के कारण चारे का उत्पादन घटने के बाद चारे की कीमतें आसमान छू रही हैं और ऐसे में हर किसी के लिए बड़ी संख्या में पशुओं को पालना संभव नहीं है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव : गाँव के आसपास मिलने वाली परंपरागत जड़ी-बूटियाँ जैसे कागलेट, किड्डा, पानसी, बठुवा, सागरी और पाटडे का मिलना अब बहुत कठिन हो गया है। ये जड़ी-बूटियाँ सामान्य स्वास्थ्य समस्याओं जैस बुखार, दर्द और खांसी में बहुत असरकारक थीं। इन जड़ी बूटियों के न मिलने के कारण ग्रामीण अब बाजार में मिलने वाली ऊँची कीमत की दवाओं पर निर्भर हो गए हैं। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग ने कई शारीरिक और मनोवैज्ञानिक बीमारियों जैसे चिड़चिड़ापन, दिल की बीमारियाँ, पक्षाघात आदि को जन्म दिया है। पानी में फ्लोराईड की मात्रा बढ़ने के कारण हमारे दाँतों और हड्डियों पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

जीविकोपार्जन विधियों में बदलाव : पूर्व में जब कृषि एक लाभ का व्यवसाय था, उस समय परिवार के सभी सदस्य गाँव में ही रहकर कृषि कार्य किया करते थे। कृषि कार्य पर बढ़ने वाली लागत ने किसानों की कमर तोड़ दी है। इसके कारण वे अपनी आजीविका की तलाश में करीबी शहरों का रुख करने को मजबूर हैं। गाँव में बसने वाले 25 परिवारों में से लगभग 15 परिवार मजदूरी करने के लिए दिल्ली, जयपुर, कनोट और बासी की ओर पलायन करते हैं। वे इन शहरों में करीब 8 महीने तक रहते हैं और मानूसन के समय गाँव में वापस लौट आते हैं। पलायन ने इन परिवारों के बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और उन्हें समाज से मिलने वाली सीखों को बहुत अधिक प्रभावित किया है। लंबे समय तक गाँव से बाहर रहने के कारण परिवारों के बीच पाया जाने वाला सामाजिक बंधन कमजोर हुआ है। इसने हमारे गाँव के सामाजिक ताने-बाने को भी कमजोर बनाया है।

दोषारोपण और सुझाव : जहाँ तक मैं समझता हूँ, जलवायु परिवर्तन हमारी नासमझी और दीर्घकालिक गलतियों का ही परिणाम है। जलवायु परिवर्तन ने हमारी खाद्य्य सुरक्षा, आजीविका, मवेशी, स्वास्थ्य के साथ ही जीवन के कई पहलुओं को प्रभावित किया है। यद्यपि सरकार ने कई महत्वाकांक्षी योजनाएँ और कार्यक्रमों को लागू किया है, लेकिन क्रियान्वयन की गति धीमी होने के कारण उनका लाभ जरूरतमंद लोगों तक नहीं पहुँच रहा है। जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभावों और सरकारी तंत्र की निष्क्रियता के कारण हम अपना आत्मसम्मान और आजादी खो चुके हैं। इसके कारण हमे जो हानि उठानी पड़ी है और हमने जिन दुखों और तकलीफों को सहा है उनका हर्जाना किसी भी कीमत पर कम नहीं आँका जा सकता। हमें जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभावों से बचाने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए। हमें आजीविका के कुछ ऐसे वैकल्पिक साधन उपलब्ध कराए जाएँ, जिनसे हम अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। जलवायु परिवर्तन के साथ अनकूलन के विभिन्न तरीकों को खोजने के लिए शोध कार्य कराया जाए और साथ ही जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी व्यवसायिक और औद्योगिक क्षेत्र के लोगों की पहचान हमें आर्थिक क्षति पूर्ति प्रदान करना सुनिश्चित किया जाए।

नाम	:	रामप्रसाद रैकवार
व्यवसाय	:	मजदूरी
पता	:	ग्राम कन्दावा, जिला टीकमगढ़, मध्यप्रदेश

सूखते तालाबों के साथ सूखता जीवन

मेरा नाम रामप्रसाद रैकवार है। मैं एक मछुआरा था लेकिन अब दैनिक मजदूरी कर अपना गुजारा करता हूँ। कुछ साल पहले मेरे पास जमीन का एक बहुत छोटा सा टुकड़ा था, जो अब मेरे पास नहीं रहा, उसे गाँव के दबंग लोगों द्वारा हथिया लिया गया है। मेरी पत्नि और तीन बच्चों सहित परिवार में कुल पाँच लोग हैं। इनके लिए दो वक्त की रोटी का इंतजाम करना मेरे लिए बहुत बड़ा चिंता का विषय है और इसलिए मेने मजदूरी के लिए जाना शुरू किया।

मेरे गाँव सहित पूरे बुंदेलखंड क्षेत्र में काली मिट्टी पाई जाती है, जो बारिश के पानी को जमीन के अंदर जाने से रोकती है। इसके कारण यहाँ के किसानों को अपने खेतों की सिंचाई करने के लिए सिंचाई के अन्य साधनों का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन मेरे समुदाय के लिए बहुत कम लोगों के पास जमीन है। वे अपना जीवन यापन मछली पकड़कर और मजदूरी से करते हैं। हमारे गाँव में एक बड़ा तालाब था, जो हमारे परिवारों के लिए भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित करता था। इसमें कई प्रकार की मछलियाँ थीं। लेकिन जलवायु संकट के विपरीत प्रभाव के कारण अब ये तालाब काली मिट्टी के समतल मैदान में बदल गया है। यह हमारी आजीविका के लिए विनाशकारी साबित हुआ और हम दो वक्त की रोटी के लिए पलायन करने को मजबूर हो गए।

हमने ये महसूस किया है कि जलवायु की संरचना में 20-25 साल पहले से परिवर्तन आ रहा है, लेकिन पिछले दस वर्षों में इनकी तीव्रता बढ़ गई है। इन दिनों प्रकृति हमारे लिए बहुत कठोर रही और अभी भी हालात सुधरने के संकेत दिखाई नहीं देते। वर्ष 2000 में यहाँ मेरे जीवन का सबसे भयानक सूखा पड़ा था। हमारे क्षेत्र में औसत बारिश 800 से 1100 मिमी होती थी। लेकिन पिछले दशक से अब तक औसत वर्षा की मात्रा घटकर 350-400 मिमी रह गई है। बीते दशक में सबसे ज्यादा बारिश वर्ष 2005 में हुई थी। 2005 में 950 मिमी वर्षा हुई थी। बारिश अब कम होती है इसकी तीव्रता बहुत अधिक बढ़ गई है। लंबे समय तक गिरने वाली पानी की बौछारें अब सिर्फ यादों में ही जिंदा है। चार महीने का बारिश का मौसम में 40-50 दिनों की अनियमित और बिखरी हुई बारिश में बदल गया है।

जलवायु परिवर्तन की घटनाओं ने हमारी आजीविका को बहुत बुरी तहर से प्रभावित किया है। लगभग 25 साल पहले तक बुंदेलखंड में 1135 छोटे-बड़े तालाब थे। आज इनमें से सिर्फ 28 तालाब ही बचे हैं जिनसे लोग अपनी जरूरतों को पूरा करते हैं, शेष तालाब पूरी तरह से समाप्त हो चुके हैं। हमारे गाँव का तालाब अब नए

बच्चों के लिए क्रिकेट का मैदान बन गया है। ये तालाब पूरी तरह से सूख गया है, अब इस तालाब में मछली पालन और मछली पकड़ने का काम नहीं हो सकता है। इसका अर्थ हुआ कि मछली पकड़ने से होने वाली हमारी नियमित आय को हम खो चुके हैं और इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे दुर्भाग्य की शुरूआत हो चुकी है। तालाब की सतह पर गाँव के संपन्न लोगों द्वारा कब्जा कर इस पर खेती की जा रही है। तालाब का सूखना उनके लिए एक वरदान है और हमारे लिए एक अभिशाप। पहले मछली बाजार में मछली बेचकर महीने में 3000 से 3500 रुपये तक की आय प्राप्त कर लेते थे। लेकिन अब इससे 2000 रुपये कमा पाना भी मुश्किल है। हमारे अपने परिवार का पालन-पोषण करने के लिए मजदूरी करने के अलावा और कोई चारा नहीं है। इसने हमारे गौरव, हमारी मर्यादा और हमारे आत्मसम्मान को हमसे छीन लिया है। हमारे गाँव के लिए अब कमाने के लिए दिल्ली, पंजाब और सूरत की ओर पलायन करने को मजबूर हैं। मैं भी पैसों के लिए कई बार दिल्ली जाता हूँ। इस मजबूरी में पलायन ने मेरे और मेरे परिवार में असुरक्षा को बढ़ाया।

हमारे जीविकोपार्जन के साधनों में ये भयावह गिरावट केवल जलवायु परिवर्तन का ही परिणाम नहीं है, इसके लिए क्षेत्रीय प्रशासन भी उतना ही जिम्मेदार है। तालाब पर कब्जा करने वालों के खिलाफ कार्यवाही करने के प्रति स्थानीय प्रशासन निष्क्रिय है और कानून का उलंघन होते हुए देख अपनी आँखें बंद कर लेता है। कहानी यहीं खत्म नहीं होती। प्रशासन पानी के परंपरागत स्त्रोंतों की देखरेख पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। पानी के ये स्त्रोत हमारी पीने के पानी और मछली पालन की समस्या को हल कर सकते हैं, लेकिन देखरेख के अभाव और प्रशासन की उदासीनता के चलते ये जल स्त्रोत धीरे-धीरे सूखते जा रहे हैं।

हम सरकार से माँग करते हैं कि -

1. परंपरागत जल स्त्रोतों की देखरेख करे
2. सड़क सुधार और दूसरे कार्यों के स्थान पर नरेगा के तहत तालाबों का गहरीकरण करवा जाए और उनके रखरखाव पर ध्यान दिया जाए
3. कब्जा करने वालों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही की जाए
4. मछुआरों को जलवायु परिवर्तन और तालाबों पर कब्जा हो जाने के कारण अपनी आजीविका खो देने के एवज में हर्जाना दिया जाए

नाम : बिशनराम एवं हरीराम

व्यवसाय : कृषि एवं पशुपालन

पता : ग्राम तिरछाखेत, जिला नैनीताल, उत्तराखण्ड

जलवायु से प्रभावित जल, जंगल और ज़मीन

मैं हरीराम (उम्र 90 वर्ष) और मेरे साथी बिशनराम (उम्र 85 वर्ष) गाँव तिरछाखेत जिला नैनीताल के रहने वाले हैं। हमारे गाँव का इतिहास करीब 200 वर्ष पुराना है, जहाँ आजादी से पूर्व करीब 43 परिवार निवास किया करते थे। गाँव के लोग या तो कृषि और पशुपालन करते थे या फिर भूमिहीन परिवार भवाली, रामगढ़ नैनीताल, घोड़ाखाल, भीमताल में मजदूरी करने के लिए जाते थे। खाली समय में लोग नए खेत बनाने या जमीन सुधारने का काम किया करते थे। हाल ही में जलवायु परिवर्तन से आए संकट के कारण और सरकार की गलत नीतियों के कारण आसपास की सारी जमीनें बंजर हो चुकी हैं या तेजी से हो रही हैं। जिसके कारण नई पीढ़ी के पास कोई काम नहीं बचा है और वे जमीन बेचकर पलायन कर रहे हैं।

हमारे ऊपर मंडरा रहे संकट के दो प्रमुख कारण हैं जो एक दूसरे के साथ बुरी तरह से गुथे हुए हैं। एक तरफ तो लोग जलवायु परिवर्तन से उभरे संकट से जल रहे हैं वहीं दूसरी तरफ सरकार की बुरी नीतियाँ जले पर नमक का काम कर रही हैं। हमारे इलाके में इसका जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत है।

जलवायु परिवर्तन के संकेत : पिछले कुछ साल पहले तक बारिश कमोबेश अपने समय पर होती थी तथा पर्याप्त मात्रा में होती थी। कई बार तो सतझड़ (सात दिनों तक लगातार होने वाली बारिश) होती थी। बरसात के मौसम के अतिरिक्त जाड़ों में बर्फ भी पड़ा करती थी और हल्की बारिश भी होती थी। इस बर्फ और बारिश के कारण जंगलों में पर्याप्त नमी बनी रहती थी और यहा से निकलने वाले स्रोतों में वर्ष भर पानी बना रहता था। पानी इतना रहता था कि उससे खेतों की सिंचाई भी हो जाती थी। पिछले कुछ वर्षों से बिल्कुल उल्टा हो रहा है। जहाँ पहले लोग जाड़ों में धूप सेकने के लिए तराई और भाभर में जाते थे, वहीं अब तराई और भाभर के लोग पहाड़ पर आ रहे हैं। अब जाड़ों में तराई और भाभर में कोहरा लगने के कारण शीत लहर चलती है और पहाड़ में पूरे जाड़ों बढ़िया धूप खिली रहती है। मौसम चक्र भी पहले के मुकाबले बदल गया है जिसका प्रमाण हम बुरांश, नाशपाती तथा अन्य फलों के पेड़ों पर भी देख सकते हैं। पूर्व में इन पेड़ों पर फूल मार्च-अप्रैल में आता था जो वर्तमान में नवंबर-दिसंबर में आने लगा है। इसी तरह बरसात के मौसम में बारिश तो हो रही है पहले जहाँ तीन से चार माह तक बारिश हुआ करती थी वहीं अब ये 6–7 दिनों तक सिमट कर रह गई है। इस साल तो हद ही हो गई। इस बार तो बहुत दिनों तक बारिश नहीं हुई और जब हुई तो 13 दिनों तक लगातार तेज बारिश हुई। मैंने अपनी जिंदगी में पहले ऐसी बारिश नहीं देखी। पहले समय के साथ धूप और जाड़ा होता था आज की तरह

मौसम में इतने तीखे बदलाव नहीं दिखते थे। बारिश में आई इस अनिश्चित्ता का असर न सिर्फ हमारे जल स्रोतों पर पड़ा बल्कि हमारे जंगलों पर व उनमें मौजूद जैव विविधता पर भी पड़ा है।

जंगलों का बदलता स्वरूप : पहले गाँव से लगे हुए कई घने जंगल थे, जिसमें मुख्य प्रजाती बांज की थी। कपाड़, कामयाड़ी, पनीयूडा, बबियाड इत्यादि जंगलों में बांज के अतिरिक्त कनौल, देवदार, काफल, बुराश, मेहल, विमल, भेकुआ, मालू आदि चौड़ी पत्तियों के पेड़ भरे थे। कुरी नहीं थी, उसकी जगह घास होती थी। मालू के पत्तों को लोग वन विभाग की मदद से हलवाई और पान वालों को बेचते थे। इनका उनयोग बरात व अन्य धार्मिक कार्यों में किया जाता था। लोग इन जंगलों से जड़ी-बूटी, लकड़ी और घास लाते थे। हल तथा अन्य कृषि कार्यों के लिए लकड़ी भी मिल जाती थी, जो अब नहीं मिल पाती। ये सब चीजें अब बाजार से खरीदनी पड़ती हैं।

जैसा कि मैंने कहा पहले बांज (ओक) के घने जंगल थे जिन्हें पहाड़ का हरा सोना भी कहा जाता था। पहाड़ के पर्यावरण खेती-बाड़ी समाज व संस्कृति से गहरा ताल्लुक रखने वाला बांज अब जंगलों से धीरे-धीरे गायब होते जा रहे हैं।

मध्य हिमालयी क्षेत्र में बांज की विभिन्न प्रजातियाँ (बांज, तिलौंज, रियांज व खरसू आदि) 1200 मीटर से लेकर 3500 मीटर की ऊँचाई के मध्य स्थानीय जलवायु मिट्टी व ढाल की दिशा के अनुरूप पायी जाती है। पर्यावरण को समृद्ध रखने में बांज के जंगलों की महत्वपूर्ण भूमिका है। बांज की जड़ें वर्षाजल को अवशोषित करने व भूमिगत करने में मदद करती हैं, जिससे जल स्रोतों में सतत प्रवाह बना रहता है। बांज की पत्तियाँ जमीन में गिरकर दबती सड़ती रहती हैं इससे मिट्टी की ऊपरी परत में ह्यूमस (प्राकृतिक खाद) का निर्माण होता रहता है। यह परत जमीन को उर्वरक बनाने के साथ ही धीरे-धीरे जल को भूमिगत करने में योगदान देती है। बांज की लंबी व विस्तृत क्षेत्र में फैली जड़ें मिट्टी को जकड़े रखती हैं जिससे भू-कटाव नहीं हो पाता। बांज का जंगल जैव विविधता का अतुल भंडार होता है, जहाँ नाना प्रकार की वनस्पतियाँ, झाड़ियाँ व फर्न की प्रजातियाँ पायी जाती हैं। बांज का पेड़ अपने तने व शाखाओं में लाईकिन, आरकिड, मॉस व फर्न जैसी वनस्पतियों को फलने-फूलने का अवसर भी देता है।

ग्रामीण कृषि व्यवस्था में भी बांज की अहम भूमिका है। इसकी हरी पत्तियाँ पशुओं के लिए पौष्टिक होती है। इसकी सूखी पत्तियाँ पशुओं के बिछावन के लिए उपयोग की जाती हैं। पशुओं के मल मूत्र में सन जाने के बाद इससे अच्छी खाद बन जाती है। ईंधन के रूप में बांज की लकड़ी सर्वोत्तम होती है। अन्य लकड़ी की तुलना में इससे ज्यादा ताप और ऊर्जा मिलती है। ग्रामीण काश्तकारों द्वारा बांज की लकड़ी का उपयोग खेती के काम में आने वाले विविध औजारों यथा कुदाल, दरातीं के बीन (मूंठ या सुंयाठ), हल के नसूड़े, पाटा व दन्याली के निर्माण में किया जाता है। ईंधन व चारे के लिए बांज का अंधाधुंध व गलत तरीके से उपयोग करना बांज के लिए सबसे ज्यादा घातक सिद्ध हुआ है। होता यह है कि बांज की पत्तियों व उसकी शाखा को बार-बार काटते रहने के कारण पेड़ पत्तियों से विहीन हो जाता है। इससे पेड़ की विकास क्रिया रुक जाती है और अंततः वह ठूंठ बनकर खत्म हो जाता है।

जंगलों में पशुओं की मुक्त चराई से भी बांज के नवजात पौधों को बहुत नुकसान पहुँचता रहा है। इसके अलावा उत्तराखंड में कई स्थानों पर चाय और फलों के बाग लगाने के लिए भी बांज वनों का सफाया किया गया।

नैनीताल के भवाली, रामगढ़, नथुवाखान, मुक्तेश्वर, धारी, धानाचूली, पहाड़पानी व भीड़पानी तथा अल्मोड़ा के पौधार, जलना, लमगड़ा, शहरफाटक, बेड़चूला, चौबटिया, दूनागिरी, पिथौरागढ़ के चैकड़ी, बेरीनाग व झलतोला, टिहरी के चंबा, धनोल्टी, पौडी के भरसाड़ तथा चमोली के तलवाड़ी, ग्वालदम व जंगल चट्टी सहित कई स्थानों में जहाँ आज सेब, आलू व चाय की खेती हो रही है वहाँ पहले बांज के घने जंगल थे। सरकारी कार्यालयों में लकड़ी के कोयलों की पूर्ति के लिए भी पूर्वकाल में बड़ी संख्या में बांज के पेड़ काटे गए।

उत्तराखंड में बांज के जंगलों की सबसे ज्यादा दुर्गति ब्रिटिश काल के दौरान हुई। वन विभाग द्वारा 1941 में यहाँ पर सुरई और चीड़ के पेड़ लगाए गए। आजादी के पूर्व से ही बांज के जंगलों को काटकर सरकार द्वारा स्लीपर व लकड़ी का कोयला बनाया गया। वन विभाग द्वारा कई दशकों तक सूबे में चीड़ के वनों को विकसित किया गया क्योंकि चीड़ के वन एक बार विकसित होने के बाद प्राकृतिक रूप से दूर-दूर तक फैलने की क्षमता रखते हैं। जो कि वन विभाग के लिए बिना काम दाम से फायदे का सौदा था। इस फायदे को देखते हुए वन विभाग तीन दशक तक उत्तराखंड में वन विकसित करने के नाम पर चीड़ के वनों का विकास करता रहा। अब यही चीड़ का वन प्रदेश के लिए नुकसानदेह साबित हो रहा है। तेजी से फैल रहे इन चीड़ के वनों के कारण जहाँ एक ओर पर्यावरण प्रदूषण हो रहा है वहीं दूसरी ओर चीड़ वनों के कारण प्राकृतिक जलस्रोत समाप्त हो रहे हैं। इतना ही नहीं चीड़ की सुईनुमा पत्तियों, जिनको पिरूल कहा जाता है, दावाग्नि के लिए पेट्रोल का काम करती हैं।

चीड़ के वनों से आच्छादित वनभूमि में किसी अन्य प्रजाति की वनस्पति पनपने का प्रश्न ही नहीं होता है क्योंकि चीड़ की पत्तियाँ आसपास के क्षेत्र को पूरी तरह ढक देती हैं। जिसके कारण वनभूमि की उर्वरा शक्ति धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। चीड़ के आक्रामक परिणामों को देखते हुए भारत सरकार के कृषि व सहकारिता मंत्रालय ने कई बार सूबे की सरकार को निर्देशित किया था कि प्रदेश में वन विभाग चीड़ उन्मूलन के कार्यों को भी अपने हाथों में ले जिसके तहत ग्रामीणों को उनके हकहुकूक की लकड़ी को देने में चीड़ के पेडों को प्राथमिकता से आवंटित करे तथा जल संसाधन बढ़ाने के लिए नौला संवर्धन कार्यक्रम पर भी विशेष ध्यान दें। लेकिन प्रदेश सरकार ने चीड़ उन्मूलन के दिशा-निर्देशों को ताक पर रख नौला संवर्धन कार्यक्रम में बजट का प्रावधान किया था। लेकिन बिना चीड़ उन्मूलन के नौला संवर्धन कार्यक्रम को चलाया जाना सरकारी धन का दुरुपयोग सिद्ध हुआ। प्रदेश में जलस्रोत समाप्ति के कगार पर पहुँच जाने के बाद भी प्रदेश सरकार चेती नहीं है। गढ़वाल मंडल के लगभग 8 हजार वर्ग किलो मीटर के चौड़ी पत्ती वाले वन को विस्तारित करने की दिशा में सरकार का ध्यान नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में वे दिन दूर नहीं जबकि प्रदेश से सभी प्राकृतिक जल स्रोत समाप्त हो जाएंगे। ऐसे में पहाड़ी प्रदेश में पेयजल के लिए चलाई जा रही हेंडपंप योजना भी फ्लाप साबित हो जाएगी क्योंकि पहाड़ों में हेंडपंप भी जमीन में पाए जाने वाले प्राकृतिक जलस्रोत से ही पानी खींचते हैं।

सूबे में तेजी से फैल रहे चीड़ के वनों को यदि समय रहते ही नहीं रोका गया तो वह दिन दूर नहीं जब प्रदेश प्राकृतिक जल स्रोत विहीन हो जाएगा। इतना ही नहीं चीड़ के इन वनों की पत्तियाँ काफी ज्वलनशील होती हैं और प्रतिवर्ष लगने वाली आग से जल संरक्षण करने वाले वनों का अस्तित्व भी समाप्त हो जाएगा। ज्ञात रहे सूबे में गढ़वाल मंडल में 12 हजार वर्ग किमी वन क्षेत्र है। जिसमें से एक तिहाई से ज्यादा (4.2 हजार वर्ग किमी)

चीड़ वन क्षेत्र हैं। इस चीड़ वन में प्रति वर्ष गर्मियों में लगने वाली दावाग्नि से बचे हुए वन क्षेत्र लगातार प्रभावित होकर घटते जा रहे हैं। इस आग के कारण जंगल में पनप रही अन्य प्रजातियाँ प्रतिवर्ष नष्ट हो रही हैं। साथ ही प्रत्येक आग के बाद चीड़ और अधिक फैल जाते हैं क्योंकि आग लगने के बाद जमीन रूखी हो जाती है और चीड़ का फैलाव रूखी जमीन में और तेजी से होता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि एक तरफ वहाँ जलवायु में आए बदलाव से हमारे जल, जंगल, जमीन पर विपरीत प्रभाव पड़ा है वहीं सरकार की गलत नीतियों के कारण ये प्रभाव और गहरे हुए हैं। लोग खेती और मवेशियों से जो अपना जीविकोपार्जन कर लेते थे अब पलायन करने को मजबूर हैं। सरकार और खासतौर पर वन विभाग की जिम्मेदारी जहाँ जल स्रोतों और मिश्रित वनों के संरक्षण की होनी चाहिए थी वहीं सरकार की नीतियों के कारण न सिर्फ हमारे जंगल नष्ट हो रहे हैं बल्कि क्षेत्रीय निवासियों का जीवन दूभर हो गया है। जमीन एक तरफ तो बंजर हो रही है, दूसरी तरफ नमी के न होने से आकस्मिक अतिवृष्टि के कारण भूक्षरण भी हो रहा है। मवेशियों के लिए चारा भूमि भी चीड़ के वन खा गए हैं।

ऐसे में हमारा मानना है कि हमारी दुर्दशा के पीछे कहीं न कहीं सरकार की नीतियाँ है और वन विभाग की अवसरवादी मानसिकता है। अगर ये विभाग अपने कर्तव्यों का निर्वाह जिम्मेदारी पूर्वक करते तो शायद जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को झेल पाने में हम ज्यादा सक्षम हो पाते।

नाम : नीलो माली

व्यवसाय : कृषि

पता : ग्राम चंपागुड़ा, जिला कोरापुत, उड़ीसा

जलवायु परिवर्तन के कारण आजीविका के सामने गंभीर चुनौतियां

मेरा नाम नीलो माली है और मेरे पिता का नाम झोटिया माली है। मैं इस गाँव में पिछले 45 वर्षों से रह रहा हूँ। चंपागुड़ा मेरा पैतृक गाँव है और यह पूरी तरह कृषि पर निर्भर है। मेरे परिवार में मैं, मेरी पत्नि, दो बेटियाँ और पिताजी सहित कुल 5 सदस्य हैं।

मेरा गाँव 2 कि.मी. की परिधि में फैला है। ये जिला मुख्यालय के पास ही है। गाँव में कुल 55 परिवार हैं और उनमें से ज्यादातर खेती करते हैं। मेरे गाँव के लोग आदिम जाति के हैं और वे सभी होमोजीनियस माली (खेती पर निर्भर एक पारंपरिक समुदाय) समुदाय से संबंध रखते हैं। मेरे गाँव में बारिश मुख्यतः दक्षिण पश्चिम मानसून से होती है। मेरा गाँव पथरीली भारी मिट्टी से ढकी हुई कायांतरित चट्टानों से बनी बंजर पहाड़ियों से घिरा है। धान और रागी की खेती, जो यहाँ के लोगों की मुख्य फसलें हैं, की सिंचाई के लिए मुख्य साधन नहरें हैं।

मैं पूरी तरह से खेती के पारंपरिक तरीकों और साधनों पर निर्भर हूँ। मेरे पास बहुत छोटे और अनुपजाऊ खेत है। अतिरिक्त आय के लिए मैं वनों से प्राप्त विभिन्न प्रकार के उत्पादों का संग्रहण भी करता हूँ। कुछ साल पहले तक हम लोग बहुत ही खुश थे। सब कुछ हमारी पहुँच के दायरे में था लेकिन अब परिस्थितियाँ बिल्कुल ही बदल गई हैं। वनों पर आधारित हमारी आजीविका के प्राकृतिक साधन बहुत तेजी से घट रहे हैं जिसने हमारे जीविकोपार्जन के अवसरों को प्रभावित किया है। जलवायु परिवर्तन ने यहाँ की मौसमीय दशाओं को बहुत अधिक प्रभावित किया है। अब इस क्षेत्र में बारिश पर्याप्त मात्रा में नहीं हो रही है, जिससे वातावरण का तापमान भी धीरे-धीरे बढ़ रहा है। पहले यहाँ 5 से 6 माह तक बारिश हुआ करती थी और 4 महीने सर्दी पड़ती थी, लेकिन अब लोगों को गर्मी का मौसम अधिक महसूस होता है। इसके कारण पर्यावरण धीरे-धीरे शुष्क होता जा रहा है जो फसलों के उत्पादन में सहायक नहीं है। अनियमित और अल्प वर्षा से जमीन भी सूखी रह जाती है और अब कुछ भी नहीं उगाया जा सकता है। मानसून के आते ही पेड़ों में नई पत्तियाँ आ जाया करती थीं। लेकिन अब वृक्षों की पत्तियाँ, नई पत्तियाँ आने से पहले ही पक जाती हैं। अब फरवरी के पहले सप्ताह से ही गर्मी का प्रारंभ हो जाता है और जून के अंत तक गर्मी का मौसम बना रहता है। तापमान के असंतुलित होने का मुख्य कारण वनों की कटाई और औद्योगीकरण है, विशेषतः उत्खनन जो हमारे क्षेत्र में हो रहा है। पिछले 5–6 वर्षों में शीत ऋतु की तीव्रता भी पहले के समान नहीं रहा। अब नवंबर में जब फसलों की कटाई का समय होता है, बारिश आने से धान और सब्जियों की फसल की कटाई प्रभावित होती है जबकि पहले बेमौसम बारिश से

कटने के लिए तैयार फसल को नुकसान नहीं होता था। सर्दी के मौसम में सुबह-शाम लोग अलाव जलाकर उसके आसपास बैठे रहते थे लेकिन वह अलाव और उसके आसपास बैठे वे लोग अब दिखाई नहीं देते। तापमान में वृद्धि होने के कारण अब अलाव जलाने की जरूरत नहीं रही। पहले इस क्षेत्र में ग्रीष्म ऋतु में भी दिन का अधिकतम तापमान 20 डिग्री सेल्सियस से कम हुआ करता था और गर्मी के मौसम में भी रात में बिना कंबल के नहीं सोया जा सकता था।

उपजाऊ भूमि में कमी आने के कारण लोग PODU कृषि (वनों को काटकर खेती के भूमि तैयार करने की विधि) की ओर आकर्षित हुए हैं। कीटनाशकों और अपारंपरिक बीजों (संकर बीज) के प्रयोग ने कृषि पर आने वाले वाले खर्च को बढ़ाया है। तापमान में वृद्धि का असर फलों और सब्जियों के उत्पादन और उनके आकार पर भी पड़ रहा है। इसी प्रकार मूली, टमाटर और अन्य क्षेत्रीय फसलों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा है जिसके कारण लोगों को काफी हानि हुई है।

आम और महुआ के पेड़ों पर समय से पहले ही फूल आ रहा है। इसका सीधा असर इन पेड़ों के फलोत्पादन पर पड़ रहा है। पहले कच्चे फल मानसून की शुरूआत पर पकना शुरू होते थे लेकिन अब ये फल बारिश के पहले ही पकने लगे हैं।

यहाँ के लोग सामान्य बीमारियों के इलाज के लिए जड़ी-बूटियों का उपयोग किया करते थे और उन्हें अस्पताल जाने की आवश्यकता नहीं थी लेकिन अब इनकी अनुपलब्धता के कारण ये लोग इलाज के लिए अस्पतालों पर निर्भर हो गए हैं। साथ ही जिस बीमारी के लिए पहले वे जो जड़ी-बूटी उपयोग करते थे, अब वह उस बीमारी के लिए कारगर नहीं है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि जलवायु परिवर्तन ने हमारी खेती, वनोपज संग्रहण, पशुपालन और आजीविका को समग्र रूप से प्रभावित किया है।

वनों के घटने के कारण जंगली जनवरों जैसे बाघ, भालू और हाथी के दिखाई देने की घटनाएँ अब कम हो गई हैं। गाँव तथा इसके आसपास फैले वनों में पाए जाने वाले पशुओं के व्यवहार में भी बहुत बदलाव दिखाई दे रहा है। जलवायु में आने वाले परिवर्तन के कारण पशु-पक्षी अपना आवास छोड़कर जाने को मजबूर हैं।

मेरे गाँव का वनों से घिरा क्षेत्र धीरे-धीरे घट रहा है। जिसके कारण वनों से जलाऊ लकड़ी का संग्रहण करने वाली महिलाओं को सबसे ज्यादा परेशानी का सामना करना पड़ रहा है। पहले महिलाओं को जलाऊ लकड़ी गाँव की सीमा से लगे जंगल में ही मिल जाया करती थी। लेकिन अब जलाऊ लकड़ी के लिए उन्हें 4–5 किमी तक की दूरी तय करनी पड़ती है। वन्य क्षेत्र घटने से सिर्फ तापमान ही नहीं बढ़ा है इसने हमारी आजीविका को भी खतरे में डाल दिया है। वनों से खाद्‌य गिरी, विभिन्न प्रकार के रेशे, मशरूम, तेल, औषधीय पौधे, गोंद, बाँस, झाड़ू घास, प्राकृतिक शहद आदि का संग्रहण हमारी आय का प्रमुख साधन था। लेकिन अब आय के साधन बहुत जल्द ही समाप्त हो जाएंगे।

यहाँ मोटे अनाज की फसलों के उत्पादन में कमी, नहरों का सूखना, जंगलों से फलों (आम, कटहल) आदि का कम होना, मसाला फसलों जैसे हल्दी, अदरक आदि में कमी, वनों में हरियाली और वृक्षों का कम होना,

इमारती लकड़ी की कमी, तापमान में वृद्धि, जंगलों में घास की कमी, बेचने के लिए झाड़ू घास का उपलब्ध न होना, वनोपजों जैसे शहद, गोंद आदि में कमी आई है। जंगली घास व छप्पर डालने के उपयोग में आने वाली घास भी कम हो गई है। पहले में घर पर छप्पर के लिए फूस (एक प्रकार की घास) का उपयोग करता था। अब इसके उपलब्ध न होने के कारण मुझे कबेलू का उपयोग करना पड़ता है।

भोजन, ईंधन और औषधि के रूप में मिलने वाली वनोपजों में कमी के कारण मुझे आय के अतिरिक्त स्रोतों की तलाश करनी पड़ रही है।

वातावरण में इस प्रकार के परिवर्तनों के कारण मुझे मजदूरी के लिए बाहर जाना पड़ रहा है। अब मैं और मेरा बेटा कोरापुट की एक कपड़ा मिल में काम करते हैं और इससे बहुत छोटी आय 100 रुपये प्राप्त करते हैं जो मेरे और मेरे परिवार के लिए पर्याप्त नहीं है। वैश्विक तापमान वृद्धि ने हमारे जीवन पर बहुत विपरीत प्रभाव डाला है और हमें डर है कि हमारी आने वाली पीढ़ियों पर इसका क्या असर होगा? हमारे कल्याण के बारे में आखिर कौन सोचेगा?

नाम	:	मधुकर सरप
उम्र	:	64 वर्ष
व्यवसाय	:	कृषि
पता	:	ग्राम कोन्हेरी सरप, जिला अकोला, विदर्भ, महाराष्ट्र

बदलती जलवायु और कृषि की बढ़ती दुश्वारियां

मेरा नाम मधुकर है। मैं अकोला से 9 किमी दूर स्थित कोन्हेरी सरप का एक 64 वर्षीय किसान हूँ। बीते 7-8 वर्षों में हमारा गाँव जलवायु परिवर्तन के कुप्रभावों से बुरी तरह से पीड़ित हुआ है। वर्ष 2000 से इन परिणामों की गहराई अधिक बढ़ गई है। केवल कोन्हेरी सरप के किसान ही नहीं बल्कि पूरे विदर्भ प्रदेश के किसान पिछले जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के कारण सकते में हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कृषि चक्र, किसानों की आर्थिक और मानसिक स्थिति व उनके स्वास्थ्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

भौगोलिक दृष्टि से विदर्भ महाराष्ट्र का लगभग एक तिहाई भाग है। यह प्रदेश कुछ समय पहले तक अपनी प्राकृतिक संपदा के कारण सुपरिचित, उपजाऊ और खुशहाल था। कृषि जलवायु के आधार पर इसे पूर्वी विदर्भ और पश्चिमी विदर्भ, दो भागों में विभाजित किया गया है। यह कहानी शुष्क भूमि के नाम से मशहूर पूर्वी विदर्भ प्रदेश की है। इस क्षेत्र की 78 प्रतिशत भूमि असिंचित है। यह पूरा क्षेत्र कपास की पट्टी के नाम से जाना जाता है। यहाँ भारी काली और हल्की पथरीली मिट्टी पाई जाती है।

बारिश के तरीकों में बदलाव : इस क्षेत्र में पहले बारिश का समय जून से सितंबर तक था और इन चार महीनों में लगातार बारिश होती थी। पर अब पिछले 8-9 वर्षों में वर्षा ऋतु में बहुत अधिक परिवर्तन आया है और अब इन 4 महीनों में मुश्किल से 40 दिन ही बारिश होती है। यहाँ औसतन 700 से 800 मिमी तक बारिश होती थी जो अब घटकर 300 से 400 मिमी ही रह गई है। वर्ष 2006 और 2010 को छोड़कर अन्य महीनों में बारिश औसत से बहुत कम रही है। बारिश की मात्रा में कमी आई है लेकिन उसकी तीव्रता बढ़ गई है। अब जब भी बारिश आती है तो इतनी तेज होती है कि पानी तेज गति से बहकर चला जाता है और अपने साथ फसलों को भी बहा ले जाता है। हालात ऐसे है कि यदि चार दिन लगातार पानी गिर जाए तो सारे खेत पानी से भर जाते हैं और फसल पीली पड़ जाती हैं और चार दिन बाद जब पानी रुक जाता है तो पाँचवें दिन फसल को पानी की आवश्यकता पड़ने लगती है। अभी इस साल इतनी बारिश होने के बाद भी फसलों के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध नहीं है।

बदल गए खेती के तरीके : विदर्भ क्षेत्र के 45 से 50 प्रतिशत किसान 5 एकड़ से कम जमीन में अपना गुजारा करते हैं। यहाँ की खेती पूरी तरह से मानसून पर निर्भर करती है। खरीफ के मौसम में बोई जाने वाली फसलें यहाँ की मुख्य फसलें हैं। यहाँ पूरी कृषि को तीन मौसमों में बाँटा गया है। यह खरीफ का मौसम जून से

अक्टूबर तक होता है और इसमें कपास मूंग और ज्वार की फसलें बोई जाती हैं। रबी के मौसम में गेहूँ, सूरजमुखी, चना उगाया जाता है और यह मौसम अक्टूबर से जनवरी तक रहता है। तीसरा मौसम फरवरी से मई चलता है, इसमें उन्नाड़ी फसल, कांदा (प्याज) और मूंगफली की खेती की जाती है।

यहाँ के किसान पहले खाद्य फसलों की मिश्रित खेती किया करते थे। यदि किसी किसान के पास 5 एकड़ भूमि है तो वह दो एकड़ में सोया, दो एकड़ में कपास और एक एकड़ में ज्वार के साथ मूंग या उड़द बोता था। कई जगह मिश्रित फसल के रूप में बरबटी और अंबड़ी भी बोई जाती थी। लेकिन अब किसानों का रुख पूरी तरह नकदी फसलों की ओर हो गया है। आज से दस साल पहले तक यहाँ की प्रमुख फसलें ज्वार, तुअर, कपास, हरी मूंग, काली मूंग हुआ करती थी, पर अब यहाँ कपास और सोयाबीन की फसल अधिक उगाई जा रही है। नकदी फसलों से कम समय में अधिक पैसा प्राप्त होता है। इसलिए पहले जहाँ किसान खाद्य फसलों की मिश्रित खेती किया करते थे, अब नकदी फसलों पर निर्भर हो गए हैं। इसका सर्वाधिक प्रभाव ज्वार की फसल पर पड़ा है। खेती पर आने वाली लागत भी बढ़ गई है। औसतन 5 एकड़ की जमीन पर 35000 हजार रुपये तक का खर्च आता है और इसके लिए किसानों को बैंक और साहूकारों से कर्ज लेना पड़ रहा है।

बढ़ गया कीटों और बीमारियों का हमला : फसलों पर कीटों के हमले में भी कई गुना वृद्धि हुई है। वातावरण के प्रदूषित होने के साथ ही कीटों के विकास की गति भी बढ़ गई है। विभिन्न प्रकार के रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग ने इन कीटों की प्रतिरोधक क्षमता को इतना अधिक बढ़ा दिया है कि अब उन पर महंगे से महंगे कीटनाशकों का भी असर नहीं हो रहा। इस बदलते हुए वातावरण के साथ ही नए-नए किस्म के कीट भी पैदा हो रहे हैं। इन कीटों में मावा, तुड़तुड़े, फुलकिड़े, तीन प्रकार के वूल वार्म्स गुलाबी, धब्बेदार और अमेरिकन प्रमुख हैं। फसलों को सबसे अधिक नुकसान अमेरिकन वूल वार्म्स के कारण हो रहा है। ये कीट कपास के अलावा तुअर और चने की फसल को भी नुकसान पहुँचाता है। इसके अलावा एक अन्य कीट घाटेअड़ी भी फसलों के लिए बहुत अधिक नुकसानदायक है। कीटों के अलावा फसलों पर बीमारियों का प्रकोप भी बढ़ गया है। कपास के पौधों में लगने वाली बीमारी लाल्या में कपास का पौधा लाल हो जाता है और मर जाता है। सबसे अहम बात तो यह है कि इस पूरी स्थिति से निपटते-निपटते किसान अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और खुद की जीवन लीला समाप्त कर लेता है।

बढ़ गया तापमान : कोन्हेरी सरप में हर साल ताप के नए रिकार्ड प्रस्थापित हो रहे हैं। वर्ष 2007 में 48, 2008 में 50 और 2009 में 52 डिग्री सेल्सियस तापमान यहाँ दर्ज किया गया है। 2004 व 2005 सरकार द्वारा सूखा घोषित किया गया था। इस भयावह गर्मी से मनुष्य और जीव-जंतु तो हैरान हैं ही, लेकिन इसका सबसे अधिक प्रभाव यहाँ के पेड़-पौधों और वनस्पितियों पर पड़ रहा है।

मिट्टी संरचना में बदलाव : तापमान में हो रही लगातार वृद्धि के कारण मिट्टी में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीव तेजी से नष्ट हो रहे हैं। ये सूक्ष्म जीव मिट्टी की परत को बनाए रखने और उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ाने में सहायक होते हैं। इन जीवों की मिट्टी में उपस्थिति के कारण उसमें बड़ी संख्या में सूक्ष्म छिद्र पाए जाते हैं। इन छिद्रों से होकर वर्षा का जल भूमि के अंदर जाता है, जिससे धरती की प्यास बुझती है। रबी के मौसम में जब

फसलों को पानी की आवश्यकता होती थी, तब पौधे जमीन से पानी को सोख कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लिया करते थे। परंतु अब इन सूक्ष्म जीवों के नष्ट होने के कारण मिट्टी में पाए जाने वाले सूक्ष्म छिद्र धीरे-धीरे कम हो रहे हैं और इनके साथ भूमि में पहुँचने वाले जल की मात्रा भी घट रही है। अब आवश्यकता के समय फसल को पानी न मिलने के कारण फसल बर्बाद हो जाती है। किसानों ने बताया कि उनके गाँव में 20-25 साल पहले असिंचित क्षेत्र में हलकी लाल मिट्टी में भी 20 बैग मूंगफली होती थी, अभी यह हालत है कि अच्छी काली सिंचित मिट्टी में भी 10 बैग से ज्यादा फली नहीं लगती है और असिंचित भूमि में तो मूंगफली बोने के बारे में कोई सोच भी नहीं सकता है।

सामना करने की विधि : जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से अपनी खेती को बचाने के लिए हमने कुछ पारंपरिक बीजों की किस्मों को बचा पाने में सफलता प्राप्त की है। ये बीच किन्हीं भी परिस्थितियों में अच्छी फसल देने में सक्षम हैं और जलवायु परिवर्तन के प्रति इनमें प्रतिरोधक क्षमता पाई जाती है। इसके साथ ही हमने कीटनाशक की एक देशी किस्म ‘‘लमक’’ भी तैयार की है।

सरकार करे प्रयास : जलवायु परिवर्तन के नुकसान से बचने के लिए कई सारे उपाय करने की आवश्यकता है-

1. वृक्षों की कटाई पर सख्ती से पाबंदी लगाई जाए। परिवार में बच्चा पैदा होते ही पेड़ लगाना आवश्यक किया जाए, एक बच्चा-एक पौधा जैसी सरकारी नीति में बदलाव लाना जरूरी है
2. बड़ी संख्या में खेतों व घरों में जल संवर्धन के लिए निर्माण कार्य कराए जाएँ
3. राष्ट्रीय कृषि नीति में परिवर्तन करते हुए लंबे समय तक चल सकने वाली खेती को बढ़ावा दिया जाए।
4. खाद्य सुरक्षा के नाम पर विदेशों से कृषि उपज का आयात बंद किया जाए
5. क्षेत्रीय तंत्रज्ञान को बढ़ावा दिया जाए जो इस स्थिति से निपटने में कारगर साबित हो

नाम	:	मोहित प्रसाद
उम्र	:	26
व्यवसाय	:	कृषि
पता	:	ग्राम ताल लिखिया, दीनूपुर, जिला गोरखपुर, उत्तरप्रदेश

बाढ़ क्षेत्र में फसलों का बदलता मौसम

मैं जन्म से ही ताल लिखिया गाँव में रह रहा हूँ। मेरा संयुक्त परिवार है जिसमें 9 सदस्य हैं। हम ढाई एकड़ के एक छोटे खेत से अपना गुजारा करते हैं, जो अब पाँच भागों में बंट चुका है। मेरा गाँव उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में है, जिसे सरयुपर मैदान के नाम से भी जाना जाता है। मेरे गाँव में लोगों के पास संपत्ति के रूप में बहुत-बहुत छोटे-छोटे खेत हैं और यहाँ की खेती को बाढ़ ने बहुत अधिक नुकसान पहुँचाया है। गाँव के अधिकांश किसान ऐसे हैं जिनके पास एक हेक्टेयर से भी कम भूमि है। ताल लिखिया रापती और रोहिणी नदी के बीच में स्थित है। यह रापती नदी से तीन किलोमीटर पश्चिम और रोहिणी नदी से 3.5 किलोमीटर पूर्व की ओर है। अधिकांश लोग अपने जीवनयापन के लिए खेती पर ही निर्भर हैं। कृषि के लिए अपने परिवार को पालने के लिए यहाँ के लोग आय की तलाश में शहरों की ओर भी पलायन करते हैं।

मौसम की दशाओं में परिवर्तन : पहले सर्दियाँ नवरात्रि के त्यौहार से ही शुरू हो जाती थीं लेकिन अब दीपावली तक गर्मी ही बनी रहती है। अब सर्दी के मौसम की ठंडक भी उतनी नहीं बची जितनी 10–15 साल पहले हुआ करती थी। मैंने देखा है कि सर्दियों के दिनों में दिन का तापमान बढ़ने से रबी की फसल की पैदावार भी प्रभावित हुई है। गर्मी का मौसम अब जल्दी ही आ जाता है। मानसून के दौरान बारिश की निरंतरता भी अब दिखाई नहीं देती। अब मानसून के मौसम में कुछ सूखे दिनों के बीच कभी-कभी बहुत तेज बारिश हो जाती है। बाढ़ की घटनाएँ और उनका प्रभाव बढ़ गया है।

इस अनियमित मौसम ने खेतों की उर्वरा शक्ति पर विपरीत प्रभाव डाला है। फसलों में बीमारियाँ और कीटों का हमला बढ़ गया है। इन बीमारियों से लड़ने के लिए अब हमें अधिकाधिक कीटानाशकों और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता है। इन रसायनों के अत्यधिक प्रयोग के कारण भी हमारी फसलों और मिट्टी की गुणवत्ता में कमी आई है। कभी भी आने वाली बाढ़ हमारे खेतों को जलमग्न कर छोड़ देती है, जिसके कारण फसल की बुआई में देरी होती है। विनाशकारी बाढ़ों के कारण पैदा हुए चारे और जलाऊ लकड़ी के संकट ने पशु व मानव दोनों के जीवन को को कड़ी चुनौतियों के सामने लाकर खड़ा कर दिया है। खेतों में भरे पानी ने न सिर्फ उनमें खड़ी खरीफ की फसल को तबाह किया बल्कि रबी की फसल की संभावनाएँ भी खत्म कर दीं। तापमान के बढ़ने के कारण रबी की फसल के लिए पहले से ही स्थितियाँ ठीक नहीं हैं।

सामना करने के तरीके : अब हमने कुछ फसलों को समय से पहले और कुछ को देर से बोना शुरू कर दिया है। इससे बाढ़ और खेतों में भरे रहने वाले पानी के फसलों पर प्रभाव को कम करने में हमें मदद मिलती है। साथ ही हम अपनी खेती के तरीकों में भी बदलाव ला रहे हैं। विभिन्न बीमारियों और कीटों से लड़ने के लिए हमने समेकित कीट प्रबंधन प्रणाली को भी अपनाया है।

माँग : प्रशासन से हम माँग करते हैं कि मनरेगा के तहत ऐसे कार्य कराए जाएँ, जो बदलती हुए वातावरण के साथ हमारे जीवन को बनाए रखने में हमारी मदद करें। साथ ही जलवायु परिवर्तन जैसे तापमान के बढ़ने के कारणहमारी फसलों को जो नुकसान पहुँचरहा है उसके लिए हमें मुआवजा दिया जाए।

नाम	:	कोठा बाई
व्यवसाय	:	कृषि
पता	:	ग्राम पुरमपुरा, विकासखंड शाहबाद, जिला बाराँ, राजस्थान

जलवायु परिवर्तन से विकृत हुई जीवन की गुणवत्ता

मेरा नाम कोठा बाई है। मैं बाराँ जिले के शाहबाद विकासखंड के पुरमपुरा गाँव की निवासी हूँ। मैं भील जाति की आदिवासी महिला हूँ और इस गाँव में पिछले 30 वर्षों से रह रही हूँ। हमारे परिवार का 9 बीघा का एक खेत है, जिससे हम साल में दो फसलें लेते हैं। खेती पर हमारी आजीविका का बहुत बड़ा हिस्सा निर्भर करता है। लेकिन हमारी फसलों की पैदावार ईश्वर के हाथ में है क्योंकि यहाँ की अधिकांश खेती वर्षा पर निर्भर करती है। जिस वर्ष में बारिश कम होती है, उस वर्ष हमारे खेत इतनी भी फसल नहीं उपजाते कि हम अपनी पारिवारिक जरूरतों को भी पूरा कर सकें। हमारे पास अब अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए मजदूरी के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं नहीं है।

हमारा गाँव 60 परिवारों का एक छोटा सा समुदाय है। आज से करीब तीस साल पहले तक हमारा गाँव वनस्पति और जीव-जतुंओं की विविधता से परिपूर्ण जंगल से घिरा हुआ था। आज ये कूनो और तिलपसी नदियों से घिरा हुआ है। भारी बारिश के दौरान इन नदियों का जल स्तर बढ़ जाने के कारण गाँव में आवा-जाही के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं। गाँव में बसने वाले दूसरे परिवार भी अपने जीवनयापन के लिए कृषि और मजदूरी दोनों पर निर्भर हैं। गाँव में सिंचाई के साधन के रूप के बस एक चेक डेम के अलावा अन्य कोई साधन नहीं है। इससे गाँव की 20 से 25 बीघा भूमि की सिंचाई संभव है।

मौसम चक्र में परिवर्तन : पिछले 2-3 दशकों में ऋतुओं के काल में बहुत अधिक बदलाव आया है। ग्रीष्म ऋतु की समय सीमा बढ़ गई वहीं शीत ऋतु का काल कम हुआ है। दुर्भाग्यवश बारिश की मात्रा भी नाटकीय ढंग से घट गई है। पहले हम विभिन्न ऋतुओं की गणना के लिए हिन्दी केलेन्डर का उपयोग किया करते थे। हिन्दी केलेन्डर के अनुसार कार्तिक माह (मध्य अक्टूबर) से मध्य फागुन (मध्य फरवरी) के अंत तक शीत ऋतु, मध्य फागुन से मध्य ज्येष्ठ (मध्य जून) के अंत तक ग्रीष्म और मध्य ज्येष्ठ से आश्विन (मध्य अक्टूबर) तक वर्षा ऋतु होती है। अब यह हिन्दी केलेन्डर अनुपयोगी हो गया है। पहले जल स्रोतों और हरियाली पर शीत ऋतु में पाला दिखाई देता था, लेकिन पिछले 10 वर्षों से पाला पड़ना बंद हो गया है।

खेती पर असर : मौसम में आए परिवर्तनों ने हमारे गाँव की कृषि पद्धति को भी बदल दिया है। उन दिनों हम जौ, मक्का, धान, चना, छौला (Cowpea), अरहर और गेहूँ जैसी लंबी समयावधि में पकने वाली फसलों को बोते थे। लेकिन अब हमारा रुख सोयाबीन और सरसों जैसी कम सिंचाई की आवश्यकता वाली फसलों की ओर

हो गया है। पहले हम सिंचित और असिंचित दोनों प्रकार की धान की खेती करते थे लेकिन बारिश की कमी ने हमें सिर्फ असिंचित धान की खेती पर ही सीमित कर दिया है। बीते दशकों में मानसून की असफलता के कारण हम अपनी पारंपरिक फसल सोरघम (Sorghum) की खेती छोड़ने को मजबूर हो गए। इसकी खेती से हमारे पालतू पशुओं के लिए पोषक चारा भी प्राप्त होता था जिससे उनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता का विकास होता था। अब हम रबि की फसल को 20 से 25 दिन पहले और खरीफ की फसल को लगभग 20 दिन की देरी से बोने के लिए मजबूर हैं। खेती के लिए हमें खाद, डीजल और पानी के पंप खरीदने पड़ रहे हैं जिससे खेती पर आने वाली लागत में भी लगातार इजाफा हो रहा है। खेती पर आने वाली अत्यधिक लागत ने हमारे गाँव के कई किसानों को कर्ज में डुबो दिया है। अत्यधिक गर्मी ने मिट्टी की नमी को सोखकर उसकी उर्वरा शक्ति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। हरियाली और वृक्षों के कम हो जाने के कारण बारिश में जल का बहाव बढ़ने से मृदा अपरदन भी बढ़ गया है।

आजीविका के साधनों पर प्रभाव : पूर्व में हमारे पशु स्वस्थ्य थे और दूध भी अधिक देते थे। पिछले दो वर्षों में तापमान के बढ़ने के कारण पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता घट गई है। वनों का आवरण और जंगली घास के कम होने के कारण पशुओं को चारा भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता। पशुओं के स्वास्थ्य में गिरावट का यह एक प्रमुख कारण है। जलवायु परिवर्तन ने हमारे पशुओं के स्वास्थ्य पर ही प्रभाव नहीं डाला है, उनकी प्रजनन क्षमता को भी कम किया है। पहले पशु हर साल गर्भधारण करते थे लेकिन आज उनके दो प्रजनन कालों में 3 से 5 वर्ष का अंतर है। पशुओं के गर्भधारण काल में भी कमी आई है।

वन्य जीवन पर प्रभाव : खेर, बेर, धोकडा, कदंब, तेंदू, गोंद, बेल पत्र और बीजा के हरे-भरे वृक्षों एवं जंगली घास जैसे सावा आज भी मेरी यादों में जीवित हैं। हम अपने घरों के निर्माण में खेर और धोकडा के वृक्षों की लकड़ी का उपयोग करते थे क्योंकि इनकी लकड़ी काफी मजबूत होती है जिसे आसानी से तोड़ा नहीं जा सकता। लेकिन आज ये उपलब्ध नहीं हैं। हमारे जंगलों ने अपनी पुरानी चमक को खो दिया है। लगभग 30 साल पहले तक वन में जंगली सुअर, बाघ, नील गाय, भेड़िया, लोमड़ी, भालू, खरगोश आदि कई जानवरों का आवास हुआ करता था लेकिन अब खरगोश के अलावा अन्य जानवर विरले ही दिखाई पड़ते हैं। गाँव की बारह महीने बहने वाली नदी में भी मछलियों की कई प्रजातियाँ जैसे ब्लेक फिश, केट फिश आदि के साथ मगरमच्छ भी पाए जाते थे। लेकिन नदी का आकार सिकुड़ जाने के कारण मछलियों की कई प्रजातियाँ विलुप्त हो गई हैं।

जीवन-शैली पर प्रभाव : पौधों जैसे सालिया आदि में फूल आने के समय में भी 20 से 30 दिन का विलंब हुआ है। सालिया के पौधे में होली के त्यौहार के 10-15 दिन पहले फूलों का आना शुरू होता था। होली का त्यौहार मनाने के लिए हम इसके फूलों से निकाले गए रंग का उपयोग करते थे। लेकिन अब इसमें समय पर फूल न आने के कारण लोग होली के त्यौहार के लिए रासायनिक रंगों का उपयोग कर रहे हैं। पहले हम बाजार से केवल नमक खरीदते थे, शेष आवश्यक वस्तुएँ हमें हमारे खेतों से या जंगल से प्राप्त हो जाया करती थीं। कई वनोत्पाद जैसे शहद, तेंदू के फल, गोंद, सावा घास और उमर हमारे भोजन और आहार की जरूरतों को पूरा करते थे। हम खरगोश और जंगली सुअर का माँस भी खाया करते थे। हमारे पारंपरिक आहार में शामिल

कई पौधे और जानवर जैसे जंगली सुअर की अनुपलब्धता ने हमें अपनी भोजन की आदतों को बदलने के लिए मजबूर कर दिया है। आज हमारी जीवन-शैली का एक बड़ा हिस्सा बाजार पर निर्भर है यहाँ तक कि खाद्य पदार्थ भी हमें बाजार से ही खरीदने पड़ रहे हैं।

महिलाओं पर प्रभाव : जलवायु परिवर्तन ने सिर्फ हमारी जीवन-शैली, पशु धन और संस्कृति को ही प्रभावित नहीं किया है, गाँव की महिलाओं के जीवन पर भी विपरीत प्रभाव डाला है। बाजार पर आधारित हमारी जीवन-शैली में हमें अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक धन की आवश्यकता है, जिसके कारण परिवार के एक और दो पुरुषों को मजदूरी के लिए गाँव से पलायन करना पड़ता है। परिवार में पुरुषों की अनुपस्थिति में उनकी पत्नियों को कई सारी मुसीबतों और कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। पुरुषों के पलायन के बाद अब वह समाज में अकेली होती है और मानसिक व शारीरिक उत्पीड़न तथा दुर्व्यवहार के लिए एक आसान शिकार होती है। हमारी पारंपरिक वनोपज, जो स्वस्थ्य रहने में हमारी मदद करते थी, अब हमारे लिए उपलब्ध नहीं हैं, जिसके कारण आज हमारे गाँव की अधिकांश महिलाएँ खून की कमी की शिकार हैं क्योंकि अब उन्हें आहार में पर्याप्त पोषण प्राप्त नहीं होता है।

दोषारोपण : जलवायु परिवर्तन खाद्य असुरक्षा, जीविकोपार्जन असुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों में कमी, सांस्कृतिक पहचान और मूल्यों के ह्रास के लिए जिम्मेदार है। इसने हमारे जीवन की गुणवत्ता को विकृत किया है। ये बदलाव बहुत तीव्र गति से हो रहे हैं क्योंकि सरकार इनके प्रति उदासीन और असंवेदनशील रवैया अपनाए हुए है। सरकार को चाहिए कि वह जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों को मिटाने के साथ ही हमारी खोई हुई पहचान, संस्कृति और खाद्य एवं जीविकोपार्जन सुरक्षा को फिर से जीवित करे। योजनाओं का नियोजन बहुत अच्छे से ढंग से किया जाए और उन्हें उच्च पारदर्शिता के साथ लागू किया गया। जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों से बचने और उसके असर को कम करने की संपूर्ण जिम्मेदारी सिर्फ सरकार की ही नहीं है, इसके लिए हमें भी प्रकृति के साथ दोस्ताना जीवन जीने की आवश्यकता है।

नाम : दिलीप कुमार

व्यवसाय : मजदूरी

पता : ग्राम प्रहराजपुर, विकासखंड राजनगर, जिला केन्द्रपारा, उड़ीसा

जलवायु संकट से घिरा मछुआरा समाज

मेरा नाम दिलीप कुमार है। मैं केन्द्रपारा जिले के राजनगर विकासखंड के प्रहराजपुर गाँव में रहता हूँ। मेरे परिवार में कुल 6 सदस्य हैं। मेरे पास ढाई एकड़ का खेत है और दो गाय हैं। मेरे परिवार की आजीविका मुख्य रूप धान की खेती, मजदूरी और एक छोटी सी किराने की दुकान, जिस पर पिताजी बैठते हैं, पर निर्भर करती है। पूरे साल में खेत से आदर्श परिस्थितियों में 25 क्विंटल धान, 50 किलो ग्राम मूंग और घर के आंगन में ही कुछ सब्जियाँ भी उगाते हैं। सब्जियों का उपयोग हम घर के लिए ही करते हैं। सामान्यतः हम धान को छोड़कर अन्य फसलों को नहीं बेचते। पैदावार अधिक होने की स्थिति में ही अन्य फसलों को बेचा जाता है। सहकारी समिति से हमने 10000 रुपये का कर्ज भी लिया है।

हमारे गाँव के पूर्व में बरूनी नदी का मुहाना, बंगाल की खाड़ी और वनस्पतियाँ, पश्चिम में हन्सिना नदी और कृषि भूमि, उत्तर में कृषि भूमि और दक्षिण में हन्सिना नदी है। हमारा गाँव भिताराकनिआका क्षेत्र का भाग है। यहाँ की पारिस्थितिकी वनस्पति आधारित है। लवण युक्त मिट्टी, खारा पानी, सिंचाई के साधनों का अभाव, ईंधन, चारा व इमारती लकड़ी के लिए वनस्पतियों पर आंशिक निर्भरता यहाँ की प्रमुख विशेषताएँ हैं। गाँव में 115 परिवार हैं और यहाँ की कुल कृषि भूमि 300 एकड़ है। धान की खेती के अलावा यहां के अन्य व्यवसाय पशुपालन व मजदूरी हैं।

मौसम की दशाओं में परिवर्तन : पिछले कुछ वर्षों में हमने कुछ तीव्र जलवायु घटनाएँ देखी हैं। वर्ष 1971, 1982, 1992, 1999 में यहाँ तीन बड़े चक्रवात आए। यहाँ का तापमान तीव्र गति से बढ़ रहा है। तापमान के साथ ही यहाँ की हवा में आद्रता का प्रतिशत भी लगातार बढ़ रहा है। अब तो शीत ऋतु में भी पसीना आता है। शीत ऋतु के काल और उसके घनत्व में कम हो गया है। अब शीत ऋतु मात्र दो महीने की ही बची है। समुद्र में ज्वारभाटा और ऊँची-ऊँची लहरें उठना अब आम घटना है। इसके कारण समुद्र का पानी कई आवासीय स्थानों में घुसने घटनाएँ भी बढ़ी हैं। पहले साल में एक या दो बार ही समुद्र का पानी आवासीय स्थानों और खेतों तक आता था। लेकिन पिछले तीन सालों में कम दाब के कारण 8 बार पानी कृषि भूमि में आ गया, वर्ष 2007 में 3 बार, वर्ष 2008 में 2 बार और वर्ष 2009 में तीन बार। 15-20 साल पहले तक मेरा गाँव सात गाँवों के एक समूह का हिस्सा हुआ करता था। उनमें पाँच गाँव जलमग्न हो गए हैं और शेष दो गाँव भी समुद्र के बहुत करीब हैं। समुद्र के पानी का खेतों में प्रवेश चिंता का विषय है। समुद्र के पानी के खेतों में आ जाने से यहाँ मिट्टी में

लवण की मात्रा बढ़ रही है और भूमि अनुपजाऊ हो रही है। अमावस्या और पूर्णिमा के समय समुद्र का इतना उग्र रूप पहले कभी नहीं देखा गया। बरूनी अमास्या, जागर अमावस्या, चितालगी अमावस्या, दीपावली अमावस्या, कुमार पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, इंदु पूर्णिमा, दीपावली अमावस्या और कार्तिक पूर्णिमा के समय अधिक ऊँची लहरों के साथ समुद्र में ज्वारभाटा आया। कुमार पूर्णिमा और कार्तिक अमावस्या को उठने वाला ज्वार ज्यादा प्रतिकूल था। इस समय समुद्र बहुत अधिक उग्र हो जाता है, उसमें ऊँची-ऊँची लहरें उठती हैं और हवा 20 किमी प्रति घंटे की रफ्तार को छूती है।

तीव्र जलवायु घटनाओं से आजीविका प्रभावित : समुद्र के खारे पानी के खेतों तक आ जाने के कारण धान की खेती करना सबसे अधिक असुरक्षित हो गया है। समुद्र का खारा पानी जब मैदानी भागों के जल स्त्रोंतों जैसे नाला, झोरा आदि में मिलता है तो उन्हें भी खारा बना देता है और फिर रबी की फसल के लिए मुश्किलें बढ़ जाती हैं। मिट्टी की लवणता साल भर तक बनी रहती है और इससे फसल का उत्पादन कम होता है। यदि मैं फसल को होने वाले नुकसान की गणना करूँ तो 2007 में जब समुद्री जल तीन बार खेतों तक आया था, उस समय हमने अपनी आधी धान की फसल को खो दिया था। 2008 में एक बार फिर हमें अपनी आधी फसल से हाथ धोना पड़ा। समुद्र का खारा पानी खेतों में घुसने से सिर्फ धान की फसल की पैदावार ही कम नहीं होती, बल्कि इससे पौधों के तने सड़ जाने कारण यह न तो पशुओं के खाने योग्य नहीं रहते हैं, जिससे पशुओं के सामने चारे की समस्या खड़ी हो जाती है और न ही इनका उपयोग छप्पर डालने की लिए किया जा सकता है। छप्पर डालने के लिए घास की कमी के कारण घर बिना छप्पर के ही रह गए। खेतों से छप्पर के लिए घास न मिलने के कारण वनों पर दवाब बढ़ जाता है क्योंकि तब हम छप्पर के लिए वनों से लकड़ी इकट्ठी करते हैं। वनों में मनावीय गतिविधियों के बढ़ जाने के कारण वन विभाग के अधिकारियों की नजर उन पर पड़ती है और उनके द्वारा मेरे समुदाय के लोगों को प्रताड़ित किए जाने की घटनाएँ भी बढ़ रही हैं।

समुद्र की उग्रता बढ़ जाने और ज्वारभाटा की घटनाओं में वृद्धि का सीधा असर मछुआरों की आजीविका पर पड़ा है। उनके द्वारा पकड़ी जाने वाली मछलियों की संख्या लगातार कम हो रही है। धान की फसलों को भारी नुकसान और मछलियों की उपलब्धता में कमी का संयुक्त प्रभाव लोगों की आर्थिक स्थिति पर पड़ रहा है और वे मजदूरी की तलाश में पलायन के लिए मजबूर हो गए हैं।

इन विपरीत और कठोर जलवायु परिस्थितियों के साथ रहने के लिए बहुत अधिक अनुकूलन और मुकाबला करने की आवश्यकता है। मेरे समुदाय के लोगों ने पिछले 10-12 वर्षों में अपने आय के साधनों में बहुत अधिक विविधता उत्पन्न की है और वे अब दैनिक मजदूरी पर आश्रित हो गए हैं। वे अपनी आजीविका की तलाश में देश के विभिन्न भागों की ओर पलायन करते हैं। अधिकांशतः पलायन स्थायी होता है क्योंकि समुद्र की प्रवेश के कारण लोग अपनी जमीन खो चुके हैं। चारे की कमी और बाजार में चारे की कीमतें बढ़ जाने के कारण लोगों के लिए पशुओं को पालना कठिन हो गया है और अब लोग अपने पशुओं को बेचकर आय के लिए मजदूरी करने लगे हैं।

कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण अब हम लोगों ने अपने घरों की सालाना साफ-सफाई और रखरखाव भी बंद कर दिया है। अब हमें अपनी खेती और अन्य पारिवारिक आवश्यकताओं के लिए बाजार से कर्ज लेना पड़ता

है। अपंग कृषि, बाजार में पशुओं की कीमत के घटने और जीविकोपार्जन के अन्य साधनों की कमी के कारण लोगों को लकड़ी काटकर उसे बाजार में बेचना पड़ रहा है। जिससे वे कुछ आय प्राप्त कर सकें। जो आगे हमारे पर्यावरण को नुकसान पहुँचाएगा।

स्थानीय स्तर पर जलवायु संकट के लिए किसी पर उंगली उठाना संभव नहीं क्योंकि यह लोगों के लालच और विलासिता का मिला-जुला परिणाम है। कुछ हद तक स्थानीय प्रशासन को लोगों को राहत पहुँचाने के लिए किर्यवाही न करने या देर से कार्यवाही करने के लिए जिम्मेदार माना जा सकता है। राजस्व विभाग और विकासखंड कार्यालय ने हमारी फसलों के नुकसान के एवज में हमें मुआवजा नहीं दिया। कुछ दिया भी तो वह बहुत थोड़ा और देरी से दिया।

हम चाहते हैं कि कृषि विभाग तटबंधन की जिम्मेदारी ले। इससे लोगों के खेतों को तो बचाया ही जा सकता है साथ ही इससे जंगलों पर दवाब भी कम होगा। विभाग को नहरों की ऊँचाई बढ़ानी चाहिए और उनका दक्षता के साथ संचालन करना चाहिए।

नाम	:	फुच्चीलाल सहनी
व्यवसाय	:	मछुआरा
पता	:	ग्राम रसलपुर, माया बघड़ा बाजार, थाना पटोरी, प्रखण्ड मोहनपुर, जिला समस्तीपुर, बिहार

अनदेखी व लापरवाही की मार झेलता मछुआरा समुदाय

मैं परंपरागत रूप से गंगा नदी में मछली का शिकार करता हूँ। मेरे गाँव सहित आसपास के गाँवों के लगभग 6000 मछुआरा परिवार गंगा नदी पर अपनी आजीविका के लिए निर्भर हैं। हमारा पूरा परिवार ही गंगा नदी से जीता है। समस्तीपुर जिले के दक्षिणी छोर पर बसे हमारे गाँव के पूर्व में बेगुसराय जिला, पश्चिम में वैशाली जिला एवं दक्षिण में पटना जिला है। भौगोलिक रूप से आज हमारा गाँव जहाँ स्थित हैं आज से 30–35 वर्ष पहले वहाँ से 6–7 मील दक्षिण में बसा करता था। लेकिन गंगा नदी में लगातार होने वाले कटाव एवं दिशा बदलाव के कारण हम लोग लगातार विस्थापित हो रहे हैं, और झुग्गी डालकर जीवन नैया पार करने के लिए जी तोड़ मेहनत कर रहे हैं। गंगा में होने वाले बाढ़, सुखाड़, बदलाव और कटाव के कारण हमारी संस्कृति व पारिवारिक जीवन, खासतौर से बच्चों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। साल दर साल कटाव होने के कारण स्थाई आवास के साथ रोजगार के अवसर में भी लगातार कमी आयी है। 40 साल पहले नदी में जितनी मात्रा में मछलियाँ मिल जाया करती थीं, अब वैसी स्थिति नहीं रही। आज एक तरफ तो बाँधों और बैराजों, खासकर फरक्का बराज के कारण नदी के जल स्तर में काफी कमी आई है वहीं दूसरी तरफ बख्तियारपुर (पटना) एवं मोकामा में नदी किनारे बसे कल कारखानों के प्रभाव से नदी का जल प्रदूषित हो रहा है। इसका सीधा प्रभाव मछलियों और हमारे पेट पर पड़ रहा है। पहले जब बाढ़ आती थी तो वह प्राकृतिक घटना होती थी, उससे हमारे खेत उपजाऊ हो जाते थे, लेकिन आज-कल की बाढ़ प्राकृतिक न होकर मानवनिर्मित हो गई है। जिसके कारण जान-माल की काफी क्षति तो होती ही है, हमारे खेतों की उपजाऊ क्षमता भी घट रही है। आज गंगा नदी के दोनों किनारों के 15–20 किलोमीटर के अंदर के निवासियों को शुद्ध पेयजल नहीं मिल रहा है। विगत दिनों यूनिसेफ द्वारा हम लोगों के चापाकल या कुंआ को लाल निशान लगाकर आर्सेनिक प्रभावित पेयजल के रूप में इंगित किया जाना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। आज बाँधों के कारण नदियों का स्वतंत्र बहाव प्रभावित हुआ है, जिसके कारण नदियों में मिट्टी या गाद जमा हुआ है और नदियों उथली हो गई हैं। जल संग्रहण क्षमता घट गई है, जिसके कारण वर्षा जल को समेट कर रखना इन नदियों के बस में नहीं रहा और यह विनाशकारी बाढ़ का कारण बनता है। जब फरक्का बराज नहीं था तो समुद्री मछलियां (हिल्सा आदि) गंगा के मीठे पानी में अंडा दे जाती थीं जिससे गंगा में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पर्याप्त मात्रा में मिल जाया करती थीं, लेकिन फरक्का बनने से पानी का प्राकृतिक बहाव रुका है और मछलियों का आना बंद हो गया है। आज बहुत सारी मछलियाँ विलुप्त हो गई हैं और जो बची हैं उनकी मात्रा बहुत कम हो गई है, जिससे नौजवान पीढ़ी में अपने परंपरागत पेशे को लेकर अरुचि बढ़ी है।

सरकार की गलत विकास नीतियों के कारण जिस प्रकार प्रकृति के साथ छेड़छाड़ की जा रही है उससे न सिर्फ प्रकृति के चरित्र में फर्क पड़ रहा है बल्कि आस-पास की जलवायु भी तेजी से बदल रही है। जलवायु परिवर्तन से नित नए संकटों का सामना करना पड़ रहा है। वर्षा की अनियमितता और बारिश के पानी के असंतुलित बहाव से नदियों पर भारी प्रभाव पड़ा है। हमारी आँखों के सामने इतने बदलाव आ रहे हैं जिनके बारे में सोच कर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इन बदलावों के पीछे एक ही वजह नजर आती है और वह है प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ जिसमें हमारे समुदाय का यह मानना है कि सबसे बड़ी जिम्मेदारी सरकार की है। जिस प्रकार से जलवायु परिवर्तन का प्रभाव नदी के जल स्तर और जमीन के नीचे के जल पर पड़ रहा है उससे खासतौर पर गरीब तबकों की कमर टूट चुकी है। सरकार को हम इसलिए दोषी मानते हैं क्योंकि सरकार ने हमारे समाज के संरक्षण के लिए कोई भी उपयुक्त कदम नहीं उठाए।

मछुआरों के पूरे समाज का अस्तित्व नदी के इर्द-गिर्द समाया हुआ है। नदी का जिस प्रकार अंधाधुंध दोहन हो रहा है उससे अब यह स्पष्ट हो चुका है कि आने वाले दिनों में न नदियाँ बचेंगी न उनमें मछलियाँ और न ही उन पर आश्रित मछुआरों का समाज।

गंगा, कावेरी, बागमती, बूढ़ी गंडक, कमला, करेट बाया, नून, जमुआरी आदि नदियाँ जहाँ हमारा भरण-पोषण करती थीं वहीं इन नदियों में आजकल प्रायः साल भर पानी नहीं रहता है। गंगा, कावेरी व बूढ़ी गंडक को छोड़कर सभी नदियाँ बरसात समाप्त होते-होते सूख जाती हैं। विगत 4 वर्षों में बारिश में आए बदलाव के कारण जमुआरी, बाया व नून, बलान, कदान नदी में पानी आया ही नहीं। 2007 में प्रलयंकारी बाढ़ आई पर साथ ही यह देखा गया कि जिले में 40–45 प्रतिशत जल स्रोत जैसे चापाकल, कुंआ मृतप्राय हो गए हैं। भू-जल स्तर काफी नीचे चला जाने से पशु-पक्षियों को भी पीने के पानी के लिए तरसना पड़ता है। आमजन और गरीब जन की बात तो छोड़ ही दें क्योंकि अब इन नदियों का पानी बाजार की उपभोक्ता वस्तु हो गई है। इसके उपयोग के लिए अब दाम चुकाने पड़ेंगे।

इसके अलावा सरकार की गलत नीतियों के कारण नदियों में मछलियों के न मिलने से आजीविका की तलाश में लोग पलायन का दंश झेलने को विवश हैं। मछुआरा समाज भी रोजी-रोटी की तलाश में दूसरे प्रदेशों में जाने लगा है। जहाँ उनका कभी बिहारी तो कभी उत्तर भारतीय के नाम पर बदस्तूर शोषण हो रहा है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक स्थिति में गिरावट आयी है। इस समुदाय में नशाखोरी बढ़ी है और गाहे-बगाहे लोग एड्स से भी पीड़ित हो रहे हैं।

हमारे समाज को तो चारों ओर से मार पड़ रही है एक तरफ तो सरकार की गरीब विरोधी नीतियों से और दूसरी तरफ से प्रकृति के कोप की भी। बची-खुची कसर समाज में व्याप्त असंवेदनशीलता ने पूरी कर दी है। जलवायु परिवर्तन के इस दौर में लुप्त होते हमारे समाज की व्यथा सुनने वाला कोई नहीं है। पर एक बात तो तय है कि अगर ऐसे ही विकास होता रहा तो एक दिन सारी मानव सभ्यता ही खतरे में पड़ जाएगी और तब सुनने-सुनाने का वक्त ही नहीं बचेगा।

नाम	:	प्रेमपात्रो जानी
उम्र	:	55 वर्ष
व्यवसाय	:	कृषि
पता	:	ग्राम पुतसिल, जिला कोरापुट, उड़ीसा

बदलती जलवायु ने बदली खेती

मैं प्रेमपात्रो जानी इस गाँव में पिछले 55 वर्षों से रह रहा हूँ। मेरा जन्म इसी गाँव में हुआ है। मेरे परिवार में मैं, मेरी पत्नि और दो बेटियां हैं। मेरे पिता और दादा का जीवन भी इसी गाँव में बीता है। मेरे पास एक बहुत छोटा और अनुपजाऊ खेत है। मेरी आजीविका पारंपरिक खेती और वनोपज संग्रहण पर निर्भर थी।

5 वर्ग किमी क्षेत्रफल में फैला मेरा गाँव, देवमाली पर्वत माला के पास बसा हुआ है और समुद्र तल से इसकी ऊँचाई 1,150 मीटर है। यह विकासखंड सेलीगुड़ा से उत्तर-पूर्व की ओर 20 किमी दूर है। गाँव की कुल आबादी 370 है और यहाँ रहने वाले अधिकांश लोग यहीं के मूल निवासी हैं। ये लोग केन्द्रीय कोरापत जिले के कोंध आदिवासियों के सजातीय हैं। पथरीली मिट्टी से ढकी हुई कायांतरित चट्टानों से बनी बंजर पहाड़ियाँ यहाँ की भूसंरचना की प्रमुख विशेषता है। यहाँ की प्रमुख फसल धान है। खेतों की सिंचाई नहरों द्वारा की जाती है। बारिश दक्षिण-पश्चिम मानसून से होती है।

घट रहे हैं आजीविका के साधन : फसलों और सब्जियों पर जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभाव ने हमारी आजीविका को खतरे में डाल दिया है। फसलों के उत्पादन में कमी और सब्जियों व फलों के आकार एवं गुणवत्ता के घटने के कारण हमारी आर्थिक आय प्रभावित हुई है। अतिरिक्त आय के लिए हम वनों से प्राप्त विभिन्न प्रकार के उत्पादों पर निर्भर थे। पिछले कुछ वर्षों में वन्य क्षेत्र घटने और वनोपज के उत्पादन में कमी आने से हमारी अतिरिक्त आय पर भी बुरा असर पड़ा है। वनों से खाद्य गिरी, विभिन्न प्रकार के रेशे, मशरूम, तेल, औषधीय पौधे, गोंद, बाँस, झाड़ू घास, शहद आदि का संग्रहण हमारी आय का प्रमुख साधन था। आज से 5-7 साल पहले तक ये सब कुछ हमारी पहुँच के दायरे में था। लेकिन अब परिस्थितियाँ बिल्कुल ही बदल गई हैं। वनों पर आधारित हमारी आजीविका के प्राकृतिक साधन बहुत तेजी से घट रहे हैं। पहले यहां के लोग वनों से कई प्रकार का शहद इकट्ठा कर उसे बाजार में बेचते थे। अब परिस्थितियाँ बिल्कुल ही बदल गई हैं। अब मीलों दूर जाने के बाद भी शहद मुश्किल से दिखाई देता है। यहाँ तक की घर में पूजा के उपयोग के लिए भी शहद इकट्ठा करना कठिन हो गया है। कई बार तो घर के लिए शहद बाजार से खरीदना पड़ता है। पिछले कुछ वर्षों में जंगलों में पाई जाने वाली जड़ी-बूटियों की उपलब्धता भी घट गई है। यहाँ के लोग सामान्य बीमारियों के इलाज के लिए इन्हीं जड़ी-बूटियों का उपयोग किया करते थे। लेकिन अब इनकी अनुपलब्धता के कारण ये लोग इलाज के लिए अस्पतालों पर निर्भर हो गए हैं। इससे इनकी जेब पर अतिरिक्त व्यय भार बढ़ गया है।

मौसम की दशाओं में परिवर्तन : जलवायु परिवर्तन ने यहाँ की मौसमीय दशाओं को बहुत हद तक प्रभावित किया है। अब इस क्षेत्र में बारिश पर्याप्त मात्रा में नहीं हो रही है। वर्ष भर में बमुश्किल 30 से 35 दिन ही यहाँ पानी गिरता है। पहले यहाँ 5 से 6 माह तक बारिश हुआ करती थी और 4 महीने सर्दी पड़ती थी। लेकिन अब वर्ष के लगभग 10 महीने सूखे ही निकल जाते हैं। जिन दो महीनों में बारिश होती है, उनमें भी पानी रुक-रुक कर ही गिरता है। साथ ही क्षेत्र का तापमान भी लगातार बढ़ रहा है। मेरे बचपन के समय गर्मी सिर्फ मई और जून माह में ही पड़ती थी। लेकिन अब फरवरी के पहले सप्ताह से ही गर्मी का प्रारंभ हो जाता है और जून के अंत तक गर्मी का मौसम बना रहता है। पिछले 5-6 वर्षों में शीत ऋतु के तापमान में भी वृद्धि हुई है। सर्दी के मौसम में सुबह-शाम लोग अलाव जलाकर उसके आसपास बैठे रहते थे लेकिन वह अलाव और उसके आसपास बैठे वे लोग अब दिखाई नहीं देते। तापमान में वृद्धि होने के कारण अब अलाव जलाने की जरूरत नहीं रही। पहले इस क्षेत्र में ग्रीष्म ऋतु में भी दिन का अधिकतम तापमान 30 डिग्री सेल्सियस से कम हुआ करता था और गर्मी के मौसम में भी रात में बिना कंबल के नहीं सोया जा सकता था।

पिछली कई पीढ़ियों से हम विभिन्न मामलों जैसे फसल की बुआई के लिए उचित समय, शिकार, आदि के अनुमान के लिए पारंपरिक विधियों का उपयोग करते आ रहे हैं। पहले मैं आसमान, सूर्य, तारे, हवा की गति और पशु-पक्षियों की आवाज को सुनकर बारिश आने और मौसम संबंधि अन्य अनुमान लगाता था। अब इन सारे लक्षणों की वैद्यता समाप्त हो गई है क्योंकि बारिश के लक्षण दिखाई देने पर अब आवश्यक नहीं कि बारिश हो। पहले दहुक पक्षी का बांस के जंगलों में चहकना, चींटियों का कतारबद्ध होकर चलना बारिश के आने का स्पष्ट संकेत था, लेकिन अब ऐसा नहीं होता।

खेती पर जलवायु परिवर्तन का असर : बारिश की मात्रा और समय सीमा के कम हो जाने के कारण वातावरण की नमी काफी तेजी से कम हो रही है, जो फसलों के उत्पादन के लिए ठीक नहीं है। बिखरी हुई, अनियमित और अल्प वर्षा के कारण कृषि भूमि भी अपनी नमी खो रही है। इन परिस्थितियों में यहाँ कुछ भी उगाना मुश्किल हो रहा है। पहले मैं अपने खेत में कई प्रकार की फसलें बोता था, जिनमें धान, रागि, सरसों और विभिन्न प्रकार के अनाज शामिल थे। बारिश की मात्रा के घटने और तापमान में वृद्धि के कारण अब मैं साल में केवल दो ही फसलें ले रहा हूँ और धान की फसल को प्राथमिकता देता हूँ।

जलवायु परिवर्तन के कारण खेती पर आने वाली लागत बढ़ गई है। कीटनाशकों और अपारंपरिक बीजों (संकर बीज) के प्रयोग ने कृषि पर आने वाले वाले खर्च को बढ़ाया है। सब्जियों और फसलों के उत्पादन में कमी चिंता का विषय है। पहले धान के एक गट्ठर में 10 से 12 किग्रा तक चावल निकलता था लेकिन अब मुश्किल से 2 से 3 किग्रा चावल ही प्राप्त होता है। तापमान में वृद्धि का असर फलों और सब्जियों के उत्पादन और उनके आकार पर भी पड़ रहा है। यहाँ उत्पादित गोभी की फसल में किसी भी गोभी का भार 1 किग्रा से कम नहीं होता था। अब इनके भार में 300 से 400 ग्राम तक की गिरावट आई है। इसी प्रकार मूली, टमाटर और अन्य क्षेत्रीय फसलों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा है, जिसके कारण लोगों को काफी हानि उठानी पड़ी है। लगभग एक दशक पहले तक मेरे खेत से इतना उत्पादन हो जाता था कि उससे नगद आय की प्राप्ति के साथ ही

मेरे परिवार को वर्ष भर पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध होता था। लेकिन अब मैं अपने खेत से इतना उत्पादन भी नहीं कर पाता कि 6 महीने भी मेरे परिवार को भोजन मिल सके।

Campaign Partners

Accion Fraterna, Andhra Pradesh
Arthik Anusandhan Kendra, UP
ASHA, MP
Beej Bachao Andolan, Uttarakhand
Bharat Jan Vigyan Jattha, Delhi
CECOEDECON, Rajasthan
Centre for Sustainable Agriculture, AP
Chhattisgarh Citizens' Initiative, Chhattisgarh
Development Support Team, Maharashtra
Forum for Biotechnology and Food Security, Delhi
Gene Campaign, Delhi
Gram Vikas Navyuvak Mandal Laporiya, Rajasthan
Gramin Swabhiman Sansthan, Rajasthan
Institute of Development Studies, Rajasthan
Jagriti Seva Sanstha, Chhattisgarh
Jamin Adhikar Andolan, Maharashtra
Jandesh, Uttarakhand
Jawahar Jyoti Bal Vikas Kendra, Bihar
Kalptaru Vikas Samiti, MP
Kisan Sewa Samiti Chaksu & Phagi, Rajasthan
Kisan Sewa Samiti Malpura, Rajasthan
Kisan Sewa Samiti Newai, Rajasthan
Kisan Sewa Samiti Shahbad, Rajasthan
Lokayan, Delhi
Mahila Sanchetna, MP
Maldhari Rural Action Group, Gujraj
MANAVI, Jharkhand
ODAF, Orissa
Oxfam India, Delhi
PAIRVI, Delhi
Parhit Sanstha, MP
Parmarth Samaj Sevi Sansthan, UP
Peoples Action for National Integration, UP
Rural Development Centre, Maharashtra
Samarpan Jan Kalyan Samiti, UP
Samarthan, MP
SANSAD, Delhi
Satya Path, Bihar
Seva Mandir, Rajasthan
South Asia Dialouge for Ecological Democracy, Delhi
Social, Orissa
SNEHA, Tamilnadu
Uttaranchal Development Institute, Uttarakhand
Van Panchayat, Uttarakhand
Vasudev Kutumbakam, Delhi
Vidyasagar Samajik Suraksha Seva Evam Shodh Sansthan, Bihar
Vikas Anusandhan Avam Shekshanik Pragati Sansthan, MP
Wada Na Todo Abhiyan, Delhi
YUVA-Rural, Maharashtra